# सात-एकांकी

लेखक

डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया



शक संवत् १८९४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
सुधाकर पाण्डेय
प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

प्रथम संस्करण – ३१०० : शक संवत : १८९४ (सन् १९७२)
मूल्य २.५०

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

# प्रकाशकीय

हिन्दी में नाट्य साहित्य की प्रमुख विधा एकांकी नाटक है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में तो एकांकी नाटक को शीर्ष स्थान प्राप्त है। एकांकी एक अंक मे समाप्त होने वाली नाट्य-विधा है, जिसकी लघु कथा की भाँति अपनी एक सीमा है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्नातक कक्षाओं के छात्रों एवं एकांकी के प्रेमी अध्येताओं के लिए सात-एकांकियों का यह प्रतिनिधि-संकलन प्रकाशित कर रहा है। हिन्दी के प्रमुख एकांकीकारों की शैलीगत विविधताओं को दृष्टि मे रख कर प्रख्यात विद्वान् डा० कुँवर चन्द्र-प्रकाश सिंह जी ने यह एकांकी-संग्रह प्रस्तुत किया है। आशा है, सात-एकांकियों का यह सुसंपादित संग्रह छात्रों एवं पाठकों के ज्ञानवर्द्धन में सहायक सिद्ध होगा। विद्वान सम्पादक ने संक्षिप्त किन्तु सोद्देश्य भूमिका मे एकाकी के तत्वो का सम्यक विवेचन किया है जिससे संग्रह और भी उपयोगी एवं महत्वपूर्ण बन गया है।

आशा है, हिन्दी जगत् मे इसका उचित आदर होगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

**सुधाकर पाण्डेय**
प्रधानमंत्री

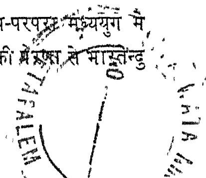
# अनुक्रम

भूमिका — सम्पादक : १
स्वर्णश्री — डा० रामकुमार वर्मा : १७
शिवाजी का सच्चा स्वरूप — सेठ गोविन्ददास : ५३
रीढ़ की हड्डी — जगदीशचन्द्र माथुर : ६१
समस्या का अन्त — उदयशंकर भट्ट : ७७
मालव-प्रेम — हरिकृष्ण प्रेमी : ९५
संस्कार और भावना — विष्णु प्रभाकर : १०७
नीली झील — डॉ० धर्मवीर भारती : १२१

# प्राक्कथन

कतिपय विद्वान् और एकांकी-लेखक आधुनिक हिन्दी की एकांकी-परम्परा को प्राचीन भारतीय नाट्य-परम्परा का सहज विकास नही मानते, वे उसे पश्चिम की देन मानते है। इसमे कोई सदेह नहीं कि क्रिया-कल्प की दृष्टि से आधुनिक एकांकी प्राचीन सस्कृत एकांकी मे भिन्न हो गये है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही कि वे सस्कृत के एकांकी नाटकों की परपंरा से सर्वथा विच्छिन्न हो गये है। जिस प्रकार आधुनिक एकांकी जीवन के यथार्थवादी आकलन और वस्तुनिष्ठ अभिव्यजन पर बल देते है, उसी प्रकार सस्कृत के अनेक एकांकी-प्रकार जीवन के यथार्थ के बीच से विकसित हुए है और उसी की लोक प्रमाणित अभिव्यक्ति का आग्रह करते है। उदाहरणस्वरूप अंक या उत्सृष्टाक के विषय में भरत का निर्देश है कि उसके कथानक मे कल्पना का योग कम से कम होना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे एकांकी-प्रकार वीथी के सम्बध में रसार्णव सुधाकर और कोहल का मत है कि उसकी नायिका सामान्या या परकीया होनी चाहिए, कुलजा नहीं। इन विशेषताओं के अतिरिक्त प्राचीन सस्कृत एकांकी-प्रकारों में देश, काल आदि के संकलन पर भी स्पष्ट रूप से विशेष बल दिया गया है। ऐसे अनेकानेक प्रमाणों के रहते हुए हिन्दी एकांकी और प्राचीन संस्कृत एकांकी की परंपरा के पारस्परिक सम्बन्ध का निषेध करते जाना समीचीन नही प्रतीत होता। विशेषतः जब पश्चिम में ब्रेख्ट जैसे विश्व-प्रसिद्ध नाटककार अपने नाट्य-प्रयोगों में प्राचीन परंपरा की उपयोगिता प्रमाणित कर रहे है।

यह कहते जाना भी भूल है कि भारतीय-नाट्य-परपरा मध्ययुग मे समाप्त हो गई थी और पश्चिमी नाटक और रगमंच की प्रेरणा से भारतेन्दु



जी के द्वारा उसका नव्योत्थान घटित हुआ। नाटक के क्षेत्र मे की गई अद्यतन खोजों से यह सिद्ध हो गया कि भारतीय नाट्य-परपरा मध्यकाल में भी अनेक रूपों मे प्रवहमान रही। इस परंपरा के अन्तर्गत हम एकांकी के अनेक रूपों को भी मध्यकालीन भक्ति-साहित्य विशेषतः कृष्णभक्ति-काव्य में एव विविध लोकधर्मी नाट्य-प्रयोगों मे प्रवर्तमान पाते है। रास-लीला के नाट्य-विधान का आश्रय लेकर जो लीला नाटक कृष्ण-भक्तो के द्वारा भक्तिकाल मे लिखे गये, वे प्रायः सब के सब एकांकी है। यदि उनका अनुशीलन किया जाय, तो वे नाट्यरासक, रासक, हल्लीसक आदि एक अंकवाले उपरूपको की परंपरा और नाट्य-विधान का अनुसरण करते हुए पाये जायेंगे। स्वयं भारतेन्दु ने भी प्राचीन भारतीय नाट्य-परपरा के कतिपय विशिष्ट तत्वों का उपयोग अपने एकांकी की शैली और विन्यास वाले नाटकों में किया। उनके समसामयिक खड्गबहादुर मल्ल के नाटको को सभी लेखक एकाकी कल्प मानते है। उनके इन एकांकी-कल्प नाटको की क्रिया-कल्प पाश्चात्य कम भारतीय अधिक है। कतिपय विशिष्ट विद्वान् प्रसाद के 'एक घूंट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते है। यह एकाकी पश्चिम के एकाकियों की शैली का अनुसरण या अनुकरण नही करता। यह संस्कृत एकांकियो की कला को ही अभिनव रूप में प्रस्तुत करता है। इन तथ्यों के रहते हुए आधुनिक हिन्दी एकांकी के विकास में संस्कृत एकांकी की परंपरा का योगदान भी स्पष्ट है।

संस्कृत दृश्य काव्य का विकास रूपक और उपरूपक नाम के दो वर्गों में हुआ है। रूपक के दश भेद सर्वमान्य है। ये है—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन। इनमें से भाण, प्रसहन, व्यायोग, वीथी और अक में एक ही अंक होता है। इस प्रकार इन दश भेदों में पाँच एकाकी सिद्ध होते है। इस प्रसग मे दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि संस्कृत नाट्य-परंपरा का आरंभ ही एकाकी से हुआ है। प्रो० डोलर राय माँकड ने अपने ग्रंथ 'दी टाइप्स आफ

संस्कृत ड्रामा' में लिखा है कि संस्कृत के विभिन्न प्रकारों में 'भाण' का विकास सर्वप्रथम हुआ—'. . .भाण was the first to evolve' इसी प्रकार उपरूपक के अट्ठारह भेदों में नाट्यरासक, रासक, गोष्ठी, उल्लाप्य, श्रीगदित, काव्य विलासिका, प्रेंखण, हल्लीश नामके भाणिक दस भेद एकाकी हैं।

इस प्रकार इन अट्ठाईस भेदों में पन्द्रह एकाकी-प्रकार है। इसके अतिरिक्त भास के लिखे हुए संस्कृत के जो सबसे पुराने नाटक मिलते है, वे है दूत-घटोत्कच, ऊरूभग, कर्णभार, मध्यम व्यायोग, इत वाक्य और चतुर्भर्णी। 'चतुर्भर्णी' चार भाणो का संग्रह है जिनका एकाकी होना स्वयं सिद्ध है। शेष पाँच भी कलेवर और रचना-प्रविधि की दृष्टि से एकाकी कहे जा सकते है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि भारतीय नाट्य-परपरा एकाकी से अनेकांकी की ओर प्रवहमान हुई है। कम से कम यह असदिग्ध है कि सस्कृत मे एकाकी और अनेकांकी का साथ-साथ विकास हुआ। इसके विपरीत अंग्रेजी साहित्य मे अनेकांकी के पश्चात् एकांकी का विकास सयत्त हुआ माना जाता है। स्पष्ट है भारतीय एकांकी-परपरा जितनी पुरानी है अंग्रेजी की उतनी नही। इन तथ्यों के प्रकाश में आधुनिक हिन्दी एकांकी के विकास में इतनी पुरानी परपरा के रिक्थ का निषेध उचित नही प्रतीत होता।

पश्चिम मे नाटक का आरभ ग्रीस में हुआ। ग्रीक नाटक का आरंभ 'टेम्पुल आफ डायोनीसिस'. के विशेष प्रकार के कर्मकाण्ड के साथ जोड़ा जाता है। ग्रीस के नाटककारों में एस्काइलस, सोफोल्किस और युरिपिडीस सबसे पुराने और प्रसिद्ध है। इनके नाटक स्थल, काल एवं कृति के संकलन अथवा एकता के थे। आग्रह के कारण एकाकी जैसे थे, परन्तु आज के एकांकी के साथ उनका सम्बध स्वीकार नही किया जाता। ग्रीक नाटकों के पश्चात् मध्यकाल में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए 'मिस्ट्री प्लेज' (रहस्य लीलाओं), 'मिरैकिलस' (चमत्कारिकाओं) एवं 'मोरैलिटीज'

(नीतिकाओं) नाम के नाट्य-प्रदर्शनों का प्रचार हुआ। नाट्य-प्रदर्शन अनेक एकांकियों के समूह जैसे होते थे। बारहवी एवं तेरहवी शताब्दी में ये नाटक बड़े लोकप्रिय थे। इन नाटकों में ग्रीक नाटकों जैसी कलात्मकता और कथावस्तु की भव्यता नही रहती थी, इसलिए पश्चिमी नाट्यकला के विकास में इनका योगदान उल्लेखनीय नही माना जाता। पर लगभग तीन शताब्दियों तक इन एकांकी-नाटक-समूहों का एकच्छत्र राज्य योरप के देशों में रहा। कुछ विद्वान् मानते है कि इग्लैड में इस कोटि के नाटको ने ही शेक्सपियर के नाटको के अवतरण के लिए भूमिका तैयार की।

इग्लैण्ड में शेक्सपियर और उनके समकालीन नाटककारों ने नाटक के वास्तविक स्वरूप की प्रतिष्ठा की। नाटक के इस नव्योत्थान के समक्ष उल्लिखित एकाकी अपनी लोकप्रियता खो बैठे। उन दिनो जिस व्यवसायी रंगमंच का उत्थान हुआ, उस पर भी उल्लिखित एकाकियो को स्थान नही मिला। पर व्यवसायी रंगमंच पर 'इटरलूड' अथवा 'आंतर्नाटिक' के रूप में एकाकी जीवित रहा। शेक्सपियर के 'हैमलेट' और 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' में ऐसे उल्लेख मिलते है, जिनमे 'आंतर्नाटिक' के रूप मे एकाकियों के प्रयोग का प्रमाण उपलब्ध होता है। शेक्सपियर के समय का इंग्लैण्ड धीरे-धीरे समृद्ध होता जा रहा था। देश मे एक नया धनिक वर्ग उठ खड़ा हुआ जिसकी जीवन-प्रणाली, प्रवृत्ति एव रुचि का गंभीर प्रभाव तत्कालीन नाटक पर पड़ा था।

इसके पश्चात् १९वी शताब्दी के अत मे एकाकी नाटक ने एक नवीन रूप ग्रहण किया। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप सामाजिक परिस्थिति में जो परिवर्तन हुआ था, उसने इस साहित्यिक विधा के नवीन रूप के उन्मेष और विकास में विधायक कार्य किया। इन दिनों रंगमच पर जो अनेक वैविध्यपूर्ण मनोरजक कार्यक्रम होते थे, उनके स्थान पर एक मुख्य कार्यक्रम और उसके पहले एक छोटा नाटक अभिनीत करने की प्रथा चली। इस छोटे नाटक को 'कर्टेनरेजर' अर्थात् पट-उन्नायक कहा

जाता था। नाटक के प्रेक्षकों के सभी वर्गों को इससे प्रसन्नता हुई। जो लोग नाटक देखने के लिए समय पर आ जाते थे, उनको मुख्य नाटक के अतिरिक्त मनोरंजन का एक अतिरिक्त कार्यक्रम उतने ही पैसों में प्राप्त हो जाता था। दूसरी ओर धनिक वर्ग के जो लोग अतिशय व्यस्तता आदि के कारण रंगशाला में विलम्ब से पहुँचते थे, उन्हें भी मुख्य नाटक के प्रेक्षण में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती थी। आगे चल पट-उन्नायकों की ही भाँति 'आफ्टर पीसेज' अर्थात् अनुसारिकाओं की प्रथा चली। जो दर्शक अपने पैसे के बदले में अधिक से अधिक मनोरंजन की अभिलाषा रखते थे, उनके अतिरिक्त मनोरंजन के लिए मुख्य नाटक के अंत में इन हास्य-व्यंग्य-प्रधान छोटे नाटकों के अभिनय की परिपाटी चली। जिनके पास समय नहीं रहता था, वे मुख्य नाटक देखकर चले जाते थे, परन्तु जिन्हें अपने टिकट की पाई-पाई वसूल करने की उत्कंठा रहती थी, वे इस 'आफ्टरपीस' नाम के एकांकी प्रहसन को देखकर उसका पूरा आनंद लेकर रंगशाला छोड़ते थे। इन दिनों स्पेन और जर्मनी के व्यावसायिक रंगमंच पर कभी-कभी पूरे नाटक के स्थान पर अनेक एकांकियों को अभिनीत करने की परिपाटी भी चल पड़ी थी। इस प्रकार रंगमंचों में पेरिस का ग्रैंड गिगनोल नाम का रंगमंच बहुत प्रसिद्ध था, इस रंगमंच पर छह-छह एकांकी एक साथ अभिनीत होते थे।

ग्रैंड गिगनोल की एकांकी नाट्य-परंपरा को अमेरिका में प्रवर्तित करने का प्रयत्न भी हुआ, पर वहाँ इस प्रयास में सफलता नहीं मिली। वहाँ नृत्य, संगीत और नाटक के मिले जुले कार्यक्रम जो वादेविल कहलाते थे, विशेष पसंद किए जाते थे। इन्हीं के साथ-साथ 'आफ्टरपीस' अर्थात् अनुसारिकाओं का प्रयोग होना प्रारंभ हुआ। अनेक परिस्थितियों में से गुजरते हुए अंततः इन्हीं में से एकांकी का विकास हुआ। संक्षेप में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार व्यवसायी रंगमंच के पट-उन्नायकों (Certain Raisers), आंतरनाटकों (Interludes) एवं अनु-

सारिकाओं (afterpieces) से आधुनिक एकांकी नाटकों के विकास के अनुकूल परिस्थिति निर्मित हो रही थी। ये नाट्य-प्रकार इतने लोकप्रिय होते जा रहे थे कि कुछ प्रतिष्ठित लेखक भी पट-उन्नायक लिखने को प्रेरित हुए थे। अंग्रेजी साहित्य में बेरी का लिखा 'दी ट्वेल्व पाउंड लुक' (the ywelve pound look) बर्नार्डशा का 'हाऊ शी लाइड टु हर हसबेंड' (how she lied to her husband) और पिनेरा का 'प्लेगोअर्स' नाम के पट-उन्नायक कलाकृति के रूप में विशेष रूप मे उल्लेखनीय है।

वस्तुत: एकांकी नाटक के कलात्मक विकास में आगे चलकर अव्यवसायी रंगमंच का योग सबसे महत्त्वपूर्ण रहा। प्रथम महायुद्ध के बाद ब्रिटेन में स्थान-स्थान पर जो अव्यवसायी नाट्यमंडल स्थापित हुए उनके द्वारा अंग्रेजी मे एकांकी नाटक के विकास को बहुत बल मिला। अंग्रेजी का पहला एकांकी नाटक 'बंदर का पंजा' कहा जाता है, जो १९०५ में लिखा गया था। इंग्लैण्ड में १९२६ से ब्रिटिश ड्रामा लीग की ओर से एकांकी-प्रतियोगिताओं का आयोजन आरंभ किया गया था, उनका बड़ा व्यापक प्रभाव अंग्रेजी साहित्य में एकांकी के विकास पर पड़ा। अव्यवसायी रंगमंच पर एकांकी के उन्नयन के इस प्रकार के जो प्रयत्न हुए उनका जो प्रभाव पड़ा, उससे एकांकी में नये-नये कला-तत्वों का उन्मेष हुआ।

## एकांकी : परिभाषा

हिन्दी में एकांकी शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'वन ऐक्ट प्ले' के समानार्थी रूप में किया जाता है जिसका सामान्य अर्थ है वह दृश्य काव्य जिसमें मात्र एक अंक हो। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'पृथ्वीराज' की भूमिका में एकांकी की परिभाषा देते हुए लिखा है "एकांकी मे एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करती हुई चरम सीमा तक पहुँचती है। इसमें कोई अप्रधान प्रसंग नही रहता... विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति

विकसित होती है, उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं।"

सेठ गोविन्ददास ने भी सफल एकांकी में जीवन की किसी समस्या से जुड़े हुए विचार, उसमें तीव्र संघर्ष, सगठित एवं मनोरंजक कथा, विशद् चरित्र-चित्रण और स्वाभाविक कथोपकथन का होना आवश्यक स्वीकार करते है। इसी प्रकार प्रो० सद्गुरु शरण अवस्थी भी एकाकी मे सुनिश्चित, सुकल्पित लक्ष, एक घटना, परिस्थिति अथवा समस्या-प्रभाव और सबके निदर्शन में चातुरी का होना आवश्यक मानते है। उनकी मान्यता है कि एकांकी में लम्बे-लम्बे कथोपकथन, दृश्यो का आधिक्य, विषयान्तरता, वर्णन बाहुल्य तथा चरित्र-विकास के लम्बे प्रयोग अथवा उलझी समस्याओ का एकांकी में कोई स्थान नही। 'अश्क' 'रंग संकेत' की स्पष्टता, अभिनेयता और सकलन त्रय को एकांकी का प्राण मानते हैं। और डॉ० नगेन्द्र एकांकी की सफलता उसमें निबद्ध जीवन के एक पहलू, महत्वपूर्ण घटना, विशिष्ट परिस्थिति, उद्दीप्त क्षण, एकता, एकाग्रता, आकस्मिकता की अनिवार्यता, सकलनत्रय तथा प्रभाव तथा वस्तु की एकता में मानते है। समग्रतः एकांकी एक अक में ही समाप्त होने वाली वह अभिनेय नाट्यकृति है जिसमें सगठित वस्तु और मूल संवेदना की एकाग्रता का नाटकीय विकास हो और वह प्रभावित करने में समर्थ हो।

## नाटक एवं एकांकी

नाटक और एकाकी में परस्पर आकार का ही अन्तर नही, अपितु उसके समग्र आंतरिक संगठन और लक्ष्य में भी होता है। नाटक मे जहाँ समग्र जीवन की अभिव्यक्ति होती है वहाँ एकांकी में जीवन के एक पक्ष, एक सवेदना, एक समस्या अथवा एक घटना को ही स्थान मिलता है क्योंकि नाटक अनेकांकी होने के कारण सम्पूर्ण जीवन-वृत्त को समाहित करने की क्षमता रखता है, जबकि एकांकी में आकार की

लघुता—जीवन के किसी एक मार्मिक दृश्य को ही स्थान मिल सकना संभव होता है। नाटक में कथा का व्यापक विस्तार होने के कारण कथा का प्रवाह मंद और बहुप्रसगो से भरा पूरा होता है जबकि एकाकी की कथा-सगठित और एक ही घटना प्रसग पर आधारित होने के कारण अधिक तीव्रगामी होती है।

एकाकी में आकार की लघुता के कारण पात्रो की संख्या सीमित होती है जबकि नाटक में कथा विस्तृत होने के कारण पात्रों की संख्या में विस्तार होता है। क्योंकि एकांकी की कथा की सगठित एकता में पात्रों का सबंध सीधा मूल प्रकरण से होता है जबकि नाटक के पात्र अनेक घटना प्रसंगो से सम्बद्ध होते हैं। एकांकी में किसी एक ही पात्र की चारित्रिक विशिष्टता को उभारा जाता है जबकि नाटककार को नाटक मे सभी पात्रो के चरित्रों का विकास करना होता है और उन्हें किसी निश्चित उद्देश्य तक ले जाकर छोड़ना होता है।

एकांकी में कथोपकथन अभिनेयात्मकता के गुण से सम्पन्न लघु, नाटकीय चरित्र और घटना की मूल सवेदना के वाहक होने आवश्यक है जबकि नाटक में लम्बे संवाद, गीत, नृत्य और अनेक अवान्तर प्रसंगों से सम्बंधित प्रसंगों की अवतारणा संभव हो सकती है। समग्रतः एकांकी के संवादों पर नाटकीयता का भार अधिक होता है, वे यदि कलात्मक हुए तो एकांकी की सम्पूर्ण सत्ता ही सदिग्ध हो जायगी।

नाटक किसी महत् उद्देश्य की सिद्धि के लक्ष्य को लेकर चलता है जबकि एकांकी में मात्र किसी एक घटना, चरित्र गुण, समस्या, संवेदना, अथवा प्रसंग के प्रभावोत्पादक विकास को ही सिद्ध करना एकांकीकार का लक्ष्य होता है।

## एकांकी के तत्व

एकांकी की परिभाषाओं के आधार पर उभरे कुछ तत्वों की व्याख्या

की जा सकती है। विद्वानों ने सामान्यत: निम्नलिखित तत्वों को एकांकी में समाहित स्वीकार किया है--

१. कथावस्तु

२. पात्र और चरित्र-चित्रण

३. कथोपकथन

४. भाषा-शैली

५. अभिनेयता

६. उद्देश्य

## कथावस्तु

एकांकी की कथावस्तु के चयन की सीमा व्यापक है। उसे जीवन और जगत् के किसी भी विषय, पक्ष, समस्या, सवेदना और भाव तथा विचार-क्षेत्र से चुना जा सकता है। आवश्यकता यह होती है कि उसकी कथावस्तु में अन्तर्वाह्य संघर्ष, उत्तेजना, रोचकता, विस्मय और संगटन की दृढ़ता हो। यदि उसकी कथावस्तु में अनुभूति की प्रामाणिकता सिद्ध हो तो उसके प्रभाव में विकास होता है। क्योंकि उसे कलात्मक एव प्रभावोत्पादक होना आवश्यक है जिसके लिए कौतूहल, विस्मय और स्वाभाविकता जैसे तत्वों को समाहित करना पड़ता है। उसकी कथा में जितना बल उसकी अभिनेयात्मकता पर दिया जाना चाहिए उतना वर्णनात्मकता पर नहीं।

एकांकी की कथा को केन्द्रित तथा सगठित होने के लिए अप्रासंगिक प्रसंगों से बचना होता है। एकांकीकार को सारी दृष्टि उस एक ही प्रसग पर लगानी होती है जिसका विकास कर वह तीव्रता से चरम सीमा पर पहुँचना चाहता है। विद्वान् एकांकी की कथावस्तु के विकास को आरम्भ, नाटकीय स्थल, द्वन्द्व, चरमसीमा और निगति जैसे पांच विकास-विन्दुओं में विभाजित करते हैं।

पर व्यावहारिक रूप से एकांकी में आरंभ और प्रयत्न दोहरी अवस्थाएं होती है क्योंकि कथा का प्रारंभ किसी संघर्ष अथवा द्वन्द्व से होता है जिसे चरम सीमा तक विकसित कर एकांकीकार शीघ्रतः निगति की ओर ले जाता है जहाँ उसकी समाप्ति हो जाती है।

संकलन त्रय एकांकी की कथावस्तु का प्राण है। समय, कार्य और स्थान की एकता को संकलनत्रय कहा जाता है। समय की एकता से तात्पर्य है कि बचपन और वृद्धावस्था की घटनाएँ एक न हो जायँ। इसी प्रकार कार्य की एकता पात्र को किसी एक ही महत्त्वपूर्ण कार्य करने की प्रेरणा देनी है और स्थल की एकता की सिद्धि के लिए एकांकी की घटना एक ही स्थल पर घटित होनी चाहिए। इस व्याख्या से निष्कर्ष निकलता है कि एकांकी की प्रवृत्ति में संकलन त्रय बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके बिना एकांकी की सफलता संदिग्ध हो जाती है।

## पात्र और चरित्र-चित्रण

व्यावहारिक दृष्टि से एकांकी मे पात्रो की संख्या पाँच या छह से अधिक नही होनी चाहिए ताकि एकांकी की कथावस्तु की सीमित परिधि मे पात्रो के चारित्रिक विकास की संभावनाओ को सुरक्षित रखा जा सके। वह इसलिए भी कि एकांकी में पात्रों के चरित्र-विकास का व्यापक रूप संभावित नही होता। उसमें तो एकांकीकार का लक्ष्य पात्र के चरित्र के किसी विशिष्ट पक्ष की संवेदना को जाग्रत भर कर देना होता है। इसीलिए यहाँ के पात्र अपने सीमित क्रिया-कलाप में भी अपनी सजीवता और दीप्ति को सुरक्षित रखते हैं अन्यथा एकांकी के केन्द्रीय आकर्षण के छिन्न-भिन्न हो जाने का भय रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि एकांकी के पात्रों में मनोवैज्ञानिक तत्वो का समावेश, अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता, स्वाभाविकता और दीप्ति होनी चाहिए। यथार्थ और आदर्श की स्वाभाविक भूमिका में उनके चरित्र की गरिमा स्पष्ट होनी चाहिए ताकि पाठक अथवा दर्शक उनके साथ तादात्म्य कर सकें।

## कथोपकथन

एकांकी में कथोपकथन का सबसे अधिक महत्त्व है। यह ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्व है जिसके माध्यम से एकांकीकार कथावस्तु को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक बना सकता है। इसीलिए कथोपकथन को एकांकी का प्राण कहा जाता है। सामान्यत: एकांकी के कथोपकथन में निम्नलिखित विशिष्टताएँ होनी चाहिए :—

(१) संक्षिप्तता

(२) सांकेतिकता

(३) वातावरण निर्माण की क्षमता

(४) मानसिक द्वन्द्व और बाह्य द्वन्द्व को व्यक्त करने की क्षमता

(५) कथावस्तु को समुचित विकास करने की क्षमता

(६) चरित्रों की मूल संवेदना को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करने की क्षमता

(७) सजीवता, स्वाभाविकता, नाटकीयता, कलात्मकता, रोचकता, विदग्धता, प्रभावोत्पादकता एवं त्वरितता

(८) सहजता, सरलता, अभिनेयता के अनुरूप शब्द-योजना

## भाषा-शैली

एकांकी की प्रधान विशेषता उसकी अभिनेयता में है। अत: उसकी भाषा-शैली का स्वरूप भी अभिनेयता की सुरक्षा करने में समर्थ होना चाहिए। वस्तु की प्रकृति और पात्रों के मानसिक स्तर के अनुरूप भाषा-शैली का प्रयोग एकांकी को बहुत सजीव बना देते हैं। मितव्ययता एकांकी की भाषा का विशिष्ट गुण होता है। उसका स्वरूप इतना व्यावहारिक होना चाहिए कि कलात्मकता की रक्षा करते हुए एकांकी की मूल संवेदना को सहज ढंग से पाठक, श्रोता तथा दर्शक तक पहुँचा दे।

## अभिनेयता

एकांकी की कलात्मक सफलता उसकी अभिनेयता पर ही आश्रित होती है। अतः एकांकीकार को रग दर्शन का ज्ञान परमावश्यक है। यदि लेखक रंगमंच के व्यावहारिक पक्ष से अनभिज्ञ है तो अभिनेय एकाकी की रचना करना उसके लिए कठिन होगा। उसे एकाकी के हर तत्व और स्तर पर व्यापक सतुलन का विधान करना होता है। समग्रतः अभिनेय एकांकी के लिए निम्नलिखित गुणों का होना परमावश्यक है—

(१) कथा संक्षिप्त और मर्मस्पर्शी हो।

(२) पात्रों की संख्या सीमित हो।

(३) संगठन के लिए संकलन त्रय का विधान हो।

(४) कथोपकथन संक्षिप्त, त्वरीय, कलात्मक, प्रभावोत्पादक और अन्तर्बाह्य वातावरण को स्पष्टतः व्यक्त करने वाले हों और एकांकी की मूल सवेदना के वाहक हों।

(५) कथा-विकास में गति हो।

(६) रंगमंच का निर्देश हो।

(७) वर्जित दृश्यों का विधान न हो जैसे हत्या, युद्ध, बाढ़, अग्नि आदि।

## उद्देश्य

एकांकी, एकांकीकार के दृष्टिकोण का संवाहक होता है। उसमें किसी न किसी रूप में अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति वह कर देता है। वैसे एकांकीकार के एकांकी में किसी विशेष, व्यापक उद्देश्य को व्यक्त करना लक्ष्य नहीं होता, क्योंकि उसके लिए जिस व्यापक फलक की आवश्यकता होती है वह वहाँ उपलब्ध नही होता। वहाँ तो उसका लक्ष्य कथावस्तु में निहित उस मूल सवेदना को चरम सीमा तक ले जाना होता है, जहाँ पहुचकर दर्शक अथवा पाठक अन्तर्बाह्य दृष्टि से आंदोलित हो उठे।

इसीलिए कहा जाता है कि एकांकी मे नाटक की तरह उद्देश्य स्पष्टतः व्यक्त नही होना चाहिए अपितु मात्र व्यजित होना चाहिए और यही उसकी कलात्मक सफलता है।

## एकांकी : वर्गीकरण

एकांकियो का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जाता है। कथावस्तु के स्रोतों के आधार पर उन्हें ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और काल्पनिक वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। किन्तु एकाकियो का वर्गीकरण उनके रचना-विधान पर ही किया जाना उपयुक्त होता है। रचना-विधान के आधार पर एकाकियो को निम्नलिखित वर्गो में रखा जा सकता है।

(१) **सुनिश्चित विधानाश्रित एकांकी**—इस प्रकार के एकांकियों का रचना-शिल्प सुनिश्चित होता है अर्थात् एकांकीकार की दृष्टि उसके आवश्यक तत्वो को नियोजित करने पर केन्द्रित रहती है।

(२) **संवाद-भाषण**—इस प्रकार के एकाकी मात्र दो पात्रों के आधार पर लिखे जाते है, जिनके परस्पर सवाद से ही कथावस्तु का विकास आदि दिखाकर लेखक उसमें निहित उसकी संवेदना को उभारता है। सेठ गोविन्द दास और प० हरिशकर शर्मा ने इस प्रकार के प्रयोग किए है।

(३) **मोनोड्रामा** (स्वोक्ति रूपक)—इस प्रकार के एकांकियो मे मात्र प्रधान पात्र ही अपनी सम्पूर्ण कथा का अभिनेयात्मक आख्यान करता है। यह एक प्रकार से स्वगत कथनों का ही सचय होता है जिसमें एक कथावस्तु का उदय और विकास स्पष्ट होता है। सेठ गोविन्द दास का 'चतुष्पद' इस प्रकार के एकांकियों का सफल उदाहरण है।

(४) **फीचर**—रेडियो प्रसारणो के माध्यम से सर्वथा प्रचारित यह एकाकियों का अभिनव रूप है। इसमें किसी विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सम्बद्ध बातों को नाट्य-सा रूप दिया जाता है। प्रेमचद की दुनिया, दिल्ली की दीवाली इसके अच्छे उदाहरण है।

(५) **झांकी**—इस प्रकार के एकांकी मे मात्र एक दृश्य होता है। संकलनत्रय का विधान इसमें दृढता से किया जाता है।

(६) **फैंटेसी**—इस प्रकार का एकांकी कल्पनाश्रित होता है जिससे उसमें अत्यधिक रोमांटिक रूप दिया जाता है। 'बादल की मृत्यु' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

(७) **रेडियो प्ले**—इस प्रकार के एकांकियों की कथावस्तु को मात्र ध्वनि के माध्यम से प्रभावोत्पादक बनाकर लेखक एक निश्चित समय में श्रोताओं का मनोरंजन करता है। इस प्रकार के एकांकियों का आजकल बहुत प्रचार है।

## हिन्दी-एकांकी का विकास

हिन्दी नाट्य साहित्य के अंतर्गत ही भारतेन्दु युग में एकांकी-नाटकों का भी प्रणयन पौराणिक, सामाजिक एव ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे प्रारम्भ हो गया था। जैसा पहले ही बताया जा चुका है कि संस्कृत के रूपक-रूपको से प्रभावित होकर भारतेन्दु ने लघु नाटिकाओं के साथ ही एकांकियो का भी प्रणयन किया था। यथा पाखंड बिडंबन (सन् १८७२ ई०), धनंजय विजय, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अंधेर नगरी और नीलदेवी आदि। भारतेन्दु के समसामयिक काशीनाथ खत्री के एकांकी 'गुन्नौर की रानी' (१८८४ ई०) को डा० गोपीनाथ तिवारी हिन्दी का पश्चिमी शैली पर लिखा हुआ प्रथम सुन्दर एकांकी कहा है। इसी युग मे पं० बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन आदि ने भी कुछ एकांकियों का प्रणयन किया था।

हिन्दी एकांकी के द्वितीय उत्थान मे अंग्रेजी, बंगला, गुजराती आदि भाषाओं के एकांकियों का पर्याप्त अनुवाद किया गया। जी० पी० श्रीवास्तव, रूपनारायण पाण्डेय, रामचन्द्र वर्मा ने देशी-विदेशी एकांकी-नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत किया। जी० पी० श्रीवास्तव, राधेश्याम

कथावाचक, 'उग्र', बदरीनाथ भट्ट, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', सुदर्शन आदि के एकाकियों से भी हिन्दी एकाकी का पथ प्रशस्त हुआ था, किन्तु हिन्दी एकांकी को नया मोड मिला प्रसाद जी के एकाकी 'एक घूँट' (सन् १९२९) के प्रकाशन से। इसके बाद एकांकी के क्षेत्र में रामकुमार वर्मा और भुवनेश्वरप्रसाद ने पदार्पण किया। रामकुमार जी का प्रथम एकाकी 'बादल की मृत्यु' १९२९ मे लिखा गया था किन्तु उनका संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' १९३५ मे प्रकाशित हुआ। डा० रामकुमार वर्मा ने एकाकी के शिल्प को सज्जित और परिष्कृत करके हिन्दी एकाकी को नया उन्मेष दिया है। रेशमीटाई, रजनी की रात, चारुमित्रा, कादम्ब, ऋतुराज आदि कई संग्रह प्रकाशित हुए। भुवनेश्वर का एकाकी सग्रह कारवा १९३५ मे प्रकाशित हुआ। भुवनेश्वर ने जटिल मानवीय समस्याओं को बिबो एव प्रतीकों के माध्यम से एकाकी मे चित्रित करने का सक्षम प्रयास किया था।

१९३८ मे 'हस' पत्रिका का 'एकाकी अंक' प्रकाशित हुआ। इससे हिन्दी एकाकी के शिल्प के शास्त्रीय पक्ष पर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट हुआ।

१९३८ मे एकाकी-लेखन के क्षेत्र मे उदयशंकर भट्ट ने प्रवेश किया। स्त्री का हृदय, आदिम युग आदि आपके एकाकी सग्रह है। श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने १९३६ मे एकाकी प्रणयन प्रारंभ किया था। देवताओं की छाया मे, पक्कागाना, पर्दा उठाओ! पर्दा गिराओ, अधी गली आपके प्रतिनिधि एकाकी संग्रह है। इन लेखकों ने जीवन की सश्लिष्ट समस्याओं, सवेदनाओं और अनुभूतियों से एकाकी-कला को नया रूप दिया।

सेठ गोविन्ददास के एकादशी पंचभूत और चतुष्पद प्रतिनिधि एकाकी हैं। जगदीशचन्द्र माथुर का एकाकी सग्रह 'भोर का तारा' हिंदी के प्रमुख एकांकी संग्रहों मे है। हाल ही मे आपका 'मेरे श्रेष्ठ रग-एकांकी' शीर्षक से एक प्रतिनिधि संकलन प्रकाशित हुआ है। इस युग के प्रमुख

एकाकीकार है हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सद्गुरुशरण अवस्थी, गोविन्दवल्लभ पंत आदि। इन एकाकीकारों ने देश के सास्कृतिक जागरण, सामाजिक परिवेश और राजनैतिक सघर्षो से प्रेरणाएँ ली है।

हिन्दी एकाकी को नवीनतम भावबोध तक पहुँचाने वालो मे डा० धर्मवीर भारती प्रमुख है। उनके एकांकी सग्रह 'नीली झील' का विशेष साहित्यिक महत्त्व है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, चिरजीत, सिद्धनाथ कुमार, गिरिजाकुमार माथुर आदि अपने-अपने ढग से हिन्दी एकाकी को सवार रहे है।

महिला एकाकीकारों मे शचीरानी गुर्टू, विमला लूथरा, विमला रैना, हीरादेवी चतुर्वेदी का उल्लेखनीय स्थान है।

अनेक प्रयोगशील एकाकीकार हिन्दी एकाकी के सर्वतोमुखी विकास के लिए सचेप्ट है। नयी प्रतिमाओ से बड़ी आशाएँ है।

**कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह**
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

# स्वर्ण-श्री

डा० रामकुमार वर्मा

## पात्र-परिचय

| | | |
|---|---|---|
| सम्राट् वृहद्रथ | : | पाटलिपुत्र के अंतिम मौर्य सम्राट् |
| पुष्यमित्र | : | सम्राट् वृहद्रथ के सेनापति और पुरोहित |
| नागदत्त<br>स्वामिदत्त | } | पुष्यमित्र की सेना में गुल्मपति |
| तेलियस | : | सम्राट् वृहद्रथ का मित्र, ग्रीक नायक |
| धारिणी | : | स्वामिदत्त की बहिन |
| मंजुगोपा | : | सम्राट् की ताम्बूल-वाहिनी |
| विलोमा | : | सम्राट् की अगरक्षिका |
| काल | : | ई० पू० १८५ |
| स्थान | : | पाटलिपुत्र में सेना-शिविर |
| समय | : | दिन के लगभग दस बजे |

[तूर्य की तीन बार ध्वनि होती है। दूर से आता हुआ जनता का सम्मिलित स्वर। कहीं-कहीं बीच में भारी स्वर से आदेश सुन पड़ता है—'सा व धा न' और उसके बाद ही किसी नारी का स्वर 'नहीं'.....'नहीं'... 'नहीं'। तीसरी बार का....'नहीं'......एक चीत्कार के रूप में होता है। जन-समूह का सम्मिलित स्वर—'यह नहीं हो सकता'....'यह नहीं हो सकता' ...'यह नहीं होगा'...'हम अन्याय नहीं सहेंगे'... ...'हम विद्रोह करेंगे'...'हम विद्रोह करेंगे'.... आदि धीरे-धीरे धीमा पड़ जाता है। उसके बाद ही नागदत्त भागता हुआ आता है और स्वामिदत्त जो तलवार लिए हुए शिविर के द्वार पर पहरा दे रहा है, अचानक रुक जाता है। नागदत्त भागकर आने के कारण हाँफ रहा है। वह आते ही तेजी से स्वामिदत्त को सम्बोधित करता है]।

नागदत्त — सा व धा न! (साँसों की गति तीव्र) स्वामिदत्त! जनता ने...जनता ने विद्रोह कर दिया है...वह आंधी की तरह भयानक हो उठी है।

स्वामिदत्त — आँधी लोहे की दीवार नही तोड सकती, नागदत्त!

नागदत्त — लेकिन जनता की शक्ति ने ज्वालामुखी का रूप ले लिया है। राजधर्म का आदेश है...आदेश है कि...

स्वामिदत्त — उसे दुहराने की आवश्यकता नही है

नागदत्त — किन्तु जनता उत्तेजित हो उठी है। (ज्वाला की जिह्वाओं की तरह वह बार-बार उठती है। टेढ़ी-तिरछी होकर

वह सब दिशाओं को समेटना चाहती है और प्रत्येक वस्तु को वह श्मशान की भस्म बनाकर छोड़ देना चाहती है।)

**स्वामिदत्त** तब उसे बुझाने के लिये राज्य-शक्ति प्रलय-घन की तरह तड़प उठेगी।

**नागदत्त** प्रलय-घन भी उसे नहीं बुझा सकेगा।

**स्वामिदत्त** तुम सैनिक हो, नागदत्त ! तुम्हें राज्य-शक्ति की आलोचना का अधिकार नहीं है।

**नागदत्त** स्वामिदत्त ! (राज्य-धर्म की उचित आलोचना का अधिकार प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति को है। यदि राज्य-धर्म की उचित आलोचना न हो तो वह व्यवस्थित नहीं हो सकता। प्रजा का सुख ही राजधर्म की कसौटी है।)

**स्वामिदत्त** तुम प्रजा का पक्ष ले रहे हो, नागदत्त ! प्रजा राजद्रोह कर रही है, तुम भी राजद्रोह के अपराधी हो।

**नागदत्त** किन्तु स्वामिदत्त ! मैं कहता हूँ कि राजद्रोह अपराध नहीं है। यदि राजाज्ञा निरकुशता के महायान पर बैठ कर आगे बढना चाहती है तो. . .

**स्वामिदत्त** तुम मर्यादा से आगे बढ़ रहे हो, नागदत्त ! तुम्हें सेनापति के सामने उत्तर देना होगा।

**नागदत्त** मैं अपने प्राणों से उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हूँ, स्वामिदत्त ! (मैं सैनिक हूँ और उसी को सैनिक समझता हूँ जो प्रश्न का उत्तर प्राणों से दे सके।)

**स्वामिदत्त** तुम्हारे इस निर्णय की सूचना सेनापति को देनी होगी।

**नागदत्त** तुम्हारी सूचना से पहले ही मेरे निर्णय की सूचना सेनापति की सेवा में पहुँच चुकी है। किन्तु स्वामिदत्त,

तुम भी सैनिक हो। मै तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि क्या सैनिक मानव नही है?

**स्वामिदत्त** नहीं। वह केवल एक यन्त्र है जिसकी गति का निर्णय उसके नायक को है। सैनिक जीवन और मृत्यु मे कोई अन्तर नहीं समझ सकता। वह केवल इसीलिए जीवित है कि वह नायक की आज्ञा से मृत्यु प्राप्त कर सके। इससे अधिक सैनिक का कोई अधिकार नहीं है।

**नागदत्त** (ऐसा सैनिक यदि स्वधर्म का सैनिक है तो उससे बढ़कर कोई न्याय नहीं है। किन्तु यदि वह सैनिक अधर्म का है तो उससे बढ़कर कोई अन्याय नहीं है। मैं स्वधर्म का सैनिक हूँ, अधर्म का नही।)

**स्वामिदत्त** यह सम्राट् की नीति से विद्रोह है और इस विद्रोह का दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

**नागदत्त** उसकी मुझे चिन्ता नहीं है, स्वामिदत्त! किन्तु तथागत का आदेश है कि प्राणि-मात्र पर दया की जाय। मै तथागत पर श्रद्धा रखता हूँ, इसलिए सैनिक होकर भी मैं मानव-धर्म में विश्वास रखता हूँ और प्राणि-मात्र पर दया करना चाहता हूँ।

**स्वामिदत्त** पर न्यायाधिकरण तुम पर दया नहीं करेगा।

**नागदत्त** न करे। किन्तु मैं सैनिक के स्वधर्म को महान् समझता हूँ। इसीलिए आज एक घटना से बहुत अधिक अशान्त हो गया हूँ।

**स्वामिदत्त** कौन-सी घटना?

**नागदत्त** सुन सकोगे उसे? सम्राट् की आज्ञा से एक निरपराध नारी आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित होने जा रही है।

**स्वामिदत्त** नारी ने दण्डित होने का कार्य किया होगा। न्यायाधिकरण पुरुष और नारी में भेद नहीं करेगा।

**नागदत्त** किन्तु नारी ने दण्डित होने का कोई कार्य नहीं किया।

**स्वामिदत्त** इसका निर्णय कौन करेगा ?

**नागदत्त** जनता की सम्मिलित कंठ ध्वनि। नारी का केवल यही अपराध है कि वह सुन्दरी है।

**स्वामिदत्त** इसके अतिरिक्त ?

**नागदत्त** इसके अतिरिक्त यही कि वह विदेशियों द्वारा संत्रस्त हुई और उसने अपनी रक्षा के लिए राज्य से सहायता माँगी।

**स्वामिदत्त** सहायता माँगी ?

**नागदत्त** हाँ, सहायता माँगी। किन्तु सम्राट् की सेना केवल वैदिक धर्म कुचलने के लिए है, नारी की रक्षा करने के लिए नहीं। इसलिए जनता ने विद्रोह किया है। वह सेनापति पुष्यमित्र के निवास की ओर गई है।

**स्वामिदत्त** और वह नारी कहाँ है ?

**नागदत्त** मेरे संरक्षण में।

**स्वामिदत्त** उसका नाम ?

**नागदत्त** धारिणी।

**स्वामिदत्त** **(चौंककर)** धारिणी ?

**नागदत्त** हाँ, धारिणी। चौंक क्यों उठे ?

**स्वामिदत्त** धारिणी मेरी बहिन का नाम है, नागदत्त !

**नागदत्त** तो इस नाम की अन्य स्त्रियाँ भी तो हो सकती हैं।

**स्वामिदत्त** तुम...तुम उस स्त्री को दिखला सकोगे ?

**नागदत्त** क्यों ? सैनिक तो यंत्र की भाँति है, जिसकी गति का निर्णय उसके नायक को है, जैसा तुम कह चुके हो अभी।

स्वामिदत्त — नागदत्त ! मैं उस स्त्री को देखना चाहता हूँ।

नागदत्त — क्यो, सैनिकों के पास आँखें भी होती है ?

स्वामिदत्त — नागदत्त, तुम मुझ पर व्यंग कर रहे हो। मै उस स्त्री को देखना चाहता हूँ।

नागदत्त — फिर तुम न्यायाधिकरण का साथ दोगे या धारिणी का ?

स्वामिदत्त — उस स्त्री को देख कर निर्णय दूँगा।

नागदत्त — तब तुम भी सैनिकों के निर्णय में विश्वास रखते हो ? ठीक है, मै वह स्त्री तुम्हें दिखलाऊँगा। **(पुकार कर)** धनंजय !

**(धनंजय का प्रवेश)**

धनंजय — आदेश !

नागदत्त — धारिणी को उपस्थित करो !

धनंजय — जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

नागदत्त — स्वामिदत्त ! प्रजा का असन्तोष केवल इस बात पर है कि सम्राट् वृहद्रथ ने अपना अभिषेक होने पर यह घोषणा की थी कि उनके शासन का सबसे बड़ा आदर्श यह होगा कि विदेशी दस्युओं से प्रजा की रक्षा हो; किन्तु सम्राट् ने अपनी आँखों के सामने देखा है कि धारिणी का अपहरण हुआ।

स्वामिदत्त — अपनी आँखों के सामने ?

नागदत्त — हाँ, अपनी आँखों के सामने। वे इन्द्रगज पर बैठ कर वन-विहार के लिए जा रहे थे और धारिणी वन से यज्ञ के लिए समिधा ला रही थी। उसी समय तेलियस नामक यवन ने उसका अपहरण किया।

**(धनंजय का प्रवेश)**

धनंजय — धारिणी उपस्थित है, गुल्मपति !

नागदत्त — उसे सामने लाओ। नहीं, उसे यहाँ भेज कर अपना स्थान ग्रहण करो।

धनंजय — जो आज्ञा। (प्रस्थान)

नागदत्त — धारिणी आ गई। वह तुम्हारी बहिन न हो, यही मैं चाहता हूँ।

(धारिणी का प्रवेश)

धारिणी — (चीखकर) स्वामिदत्त!

स्वामिदत्त — (सहमकर) बहिन!

धारिणी — (सिसकियाँ लेती हुई) बहिन मत कहो मुझे। धारिणी तुम्हारी बहिन नहीं है, स्वामिदत्त! तुम्हारे रहते उसका अपहरण हुआ है। (घुटनों के बल गिर पड़ती है।)

स्वामिदत्त — तुम्हारा अपहरण हुआ, बहिन! यह कैसे हुआ? उठो!

धारिणी — (सिसकियाँ लेती हुई) मेरा भाग्य ही जब धूल में मिल गया, तब उठकर क्या करूँगी। मैं लांछित हुई। मैंने न्याय माँगा, पर न्याय के स्थान पर मुझे दण्ड मिला। मैंने न्याय क्यों माँगा? मैं कलंकित क्यों नहीं हुई? पाटलिपुत्र की नारी अपनी पवित्रता की रक्षा करने पर आज दण्डित हो रही है! (सिसकियाँ)

स्वामिदत्त — मैं लज्जित हूँ, बहिन! मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिए। तुम्हारे आँसुओं से मुझे पीड़ा हो रही है।

धारिणी — मेरे जीवन में आँसुओं के सिवाय और रह क्या गया? इन्हीं आँसुओं मे मैं अपनी आयु डुबाती रहूँगी। न्याय की भीख में मुझे कारावास जो मिला है।

मिदत्त — न्याय की भीख में कारावास?

धारिणी — हाँ, कारावास। किन्तु मुझे कारावास का दण्ड नहीं चाहिए। मुझे मृत्यु का दण्ड चाहिए।...मैं मृत्यु का दण्ड चाहती हूँ। मेरे अपराध का दण्ड...

स्वामिदत्त — तुमने कोई अपराध नहीं किया, बहिन! अपराध तो मैंने किया है कि सैनिक होकर भी मैं तुम्हें इस अवस्था में देख रहा हूँ और रक्षा करने में असमर्थ हूँ।

धारिणी — अब नारियों की रक्षा करना सैनिकों का धर्म नहीं रह गया। सैनिक तो अब नारियों को लांछित करने के लिए रखे गये हैं। मैं यह लांछन बार-बार सहन नहीं करना चाहती, इसलिए मृत्यु का दण्ड चाहती हूँ। भाई, मुझपर यह कृपा करो। मैं हाथ जोड़ कर यही भिक्षा माँगती हूँ।

नागदत्त — सब सुन चुके, स्वामिदत्त! यह भिक्षा अपनी बहिन को दे दो न?

स्वामिदत्त — मैं लज्जित हूँ, बहिन! मेरी प्रार्थना है कि तुम शान्त हो जाओ।

नागदत्त — मैं भी तुम्हारा एक भाई हूँ, बहिन! मैं तुम्हारे लांछन का प्रतिकार करूँगा। तुम्हारी सब तरह से रक्षा करूँगा। तुम मुझे अपना विवरण दो।

धारिणी — अपनी कलंक-कथा कितनी बार दुहराऊँ? मैं महाकान्तार से लौट रही थी। उसी समय तेलियस नामक यवन ने मुझे पीछे से पकड़ना चाहा।

स्वामिदत्त — यवन तेलियस?

धारिणी — हाँ, यही नाम मैंने सुना। उस समय सम्राट् इन्द्रगज पर बैठकर, वन-विहार के लिए जा रहे थे। मैंने पुकारकर कहा—'सम्राट्! मेरी रक्षा कीजिए।' और सम्राट् ने सैनिकों को आज्ञा नहीं दी कि वे मेरी रक्षा करें।

**नागदत्त** सम्राट् ने रक्षा करने की आज्ञा नहीं दी?

**धारिणी** नहीं।

**स्वामिदत्त** तेलियस सम्राट् का विश्वासपात्र नायक है।

**नागदत्त** फिर तुम्हारी रक्षा कैसे हुई, देवि!

**धारिणी** मेरे क्रन्दन से महाकान्तार के कुछ श्रमिक दौड़ पड़े। उन्होंने तेलियस को घेर लिया और मुझे बच निकलने का अवसर दे दिया।

**नागदत्त** सम्राट् ने कोई प्रतिरोध नहीं किया?

**धारिणी** वे तत्क्षण लौट पड़े और उन्होंने दण्डनायक को आज्ञा दी कि तेलियस को जो कष्ट हुआ है उसके लिए उसे पुरस्कार दिया जावे और श्रमिकों को दण्ड।

**नागदत्त** और तुम्हारे सम्बन्ध में, देवि!

**धारिणी** मुझे आजीवन कारावास।

**स्वामिदत्त** क्यों?

**धारिणी** इसलिए कि मैने तेलियस के समक्ष आत्म-समर्पण नहीं किया।

**नागदत्त** पाटलिपुत्र में यवनों के समक्ष नारियों का आत्म-समर्पण क्या न्याय है, स्वामिदत्त!

**(स्वामिदत्त मौन है।)**

**नागदत्त** तुम मौन क्यों हो? उत्तर दो।

**धारिणी** सारी प्रजा भी पुकार-पुकार कर कह रही है कि यह न्याय नहीं है। इसीलिए वह संगठित होकर सेनापति पुष्यमित्र के समक्ष निवेदन करने गई है।

**स्वामिदत्त** और हमारी माँ कहाँ है?

**धारिणी** (फूटकर) उन्होंने इस राजाज्ञा को सुनकर नगर के सिंह-द्वारे से अपना सिर टकरा लिया और उनके सिर से

रक्त की धार बह निकली है। वे चीत्कार कर 'नहीं', 'नहीं' कहती हुई जनता का सहारा लिए न्याय के लिए गई है।

स्वामिदत्त — शान्त होओ, बहिन !

धारिणी — यदि मुझे प्राणदण्ड दिया जाता तो मै शान्त रहती, किन्तु जीवित रहकर मैं अपना कलक जीवित नही रखना चाहती।

नागदत्त — मैं बहुत दुखी हूँ, देवी !

धारिणी — (बिलखकर) आज पाटलिपुत्र की नारी अपनी रक्षा नही कर सकती। यदि वह सम्राट् से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती है तो सम्राट् अपनी राजनीति में नारी को ही दण्डित करना चाहते है। मैं जीवित नहीं रहूँगी।

स्वामिदत्त — (चीखकर) बहिन !

धारिणी — (सिसकते हुए) भाई स्वामिदत्त, मै तुमसे भिक्षा माँगती हूँ कि तुम अपनी तलवार से मेरा सिर काट दो। मेरे रक्त से तुम मेरा कलक धो दो।

नागदत्त — स्वामिदत्त ! स्वीकार करो अपनी बहिन की प्रार्थना। तुम्हारी तलवार राजधर्म का पालन करना जानती है।

स्वामिदत्त — (स्तंभित होकर) राजधर्म का पालन !

नागदत्त — हाँ, राजधर्म का पालन। जिस सम्राट् को नारी की रक्षा में नारी के दण्ड की व्यवस्था करनी पड़ती है, उस सम्राट् को नारी की मृत्यु से प्रसन्नता ही होगी। और जब उसकी मृत्यु उसके भाई के हाथों हो, तुम पुरस्कार के अधिकारी होगे।

**स्वामिदत्त** बहिन, मै बार-बार लज्जित हूँ। तुम्हारी यह दशा देखकर मै अपनी राज-सेवा को कलंक का अभिशाप समझता हूँ।

**धारिणी** पर क्या तुम अपनी बहिन को जीवन के अभिशाप से तड़पती हुई देखोगे? यवन ने उसके अपहरण की चेष्टा की। उसका स्पर्श किया। ओह! उसका स्पर्श अभी तक सर्प-दंशन की भाँति मेरे शरीर में ज्वाला की लपटें उठा रहा है। उससे मेरा सारा हृदय जल रहा है। मै जीवित नही रहना चाहती। भाई! मैं जीवित नही रहना चाहती। मृत्यु की यंत्रणा भी उस स्पर्श से हलकी होगी। मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो!

(सिसकियाँ)

**नागदत्त** किन्तु तुम पवित्र हो, बहिन! (मृतक शरीर गंगा का स्पर्श करते हैं, पर गंगा अपवित्र नही होती।)

**स्वामिदत्त** (क्षुब्ध होकर) नागदत्त! मेरी बहिन को यहाँ से ले जाओ। मै उसे इस रूप में नहीं देख सकता।

**नागदत्त** (पुकारकर) धनंजय!

(धनंजय का प्रवेश)

**धनंजय** आदेश!

**नागदत्त** आर्या धारिणी को यहाँ से ले जाओ।

**धनंजय** जो आज्ञा। (धारिणी से) देवी! आदेश का पालन करें।

**धारिणी** (बिलखकर) स्वामिदत्त! स्वामिदत्त! यदि तुम अपनी तलवार से मेरा मस्तक नही काट सकते तो इस सैनिक को आज्ञा दो कि यह कार्य वह पूरा कर दे। मैं जीवित नही रहना चाहती। मैं जीवित नहीं रहूँगी...। नही रहूँगी...।

(धनंजय धारिणी को ले जाता है। नेपथ्य में क्षीण होता हुआ स्वर—"मैं जीवित नहीं रहूँगी।")

(एक क्षण स्तब्धता)

**नागदत्त** क्या सोच रहे हो, स्वामिदत्त! तुम राजाज्ञा का साथ दोगे या अपनी बहिन का?

**स्वामिदत्त** (चीखकर) मेरी राजभक्ति में आग लग रही है, नागदत्त! उससे मेरा रोम-रोम जल रहा है।

**नागदत्त** यह पहला अवसर नही है, स्वामिदत्त, जब नारी लांछित हुई है। इसके पहले भी न जाने कितनी स्त्रियों ने आत्महत्याएँ की हैं, न जाने कितनी स्त्रियों का यवनों द्वारा अपहरण हुआ है, और राजदण्ड अपने स्वार्थ की छाया में ऊँघता रहा है। आज तुमने अपनी आँखों के सामने अपनी बहिन को लांछित होते देखा है। तुम अधिकतर पांचाल में रहे। इस कारण इन बातों से अधिक परिचित नही हो। पर मै तुमसे यही कहना चाहता हूँ कि आज पाटलिपुत्र के सैनिक राजसिंहासन के नीचे गढे हुए सिंहों की तरह निर्जीव और शोभा की वस्तु ही रह गये है। सम्राट् की आज्ञा धूमकेतु की भाँति समय-कुसमय अपनी भयानक लम्बाई में...

(नेपथ्य में तीव्र तुमुल। दूर "पुष्यमित्र की जय" का घोष)

**नागदत्त** (स्वगत) क्या आर्य पुष्यमित्र यहाँ आ रहे है? (स्वामिदत्त से) हाँ, आर्य पुष्यमित्र ही आ रहे है। सम्भवतः वे शिविर देखने के लिए आये हों।

**स्वामिदत्त** उनके सामने मैं इस घटना के सम्बन्ध में निवेदन करना चाहूँगा।

**नागदत्त** क्या तुम समझते हो कि उन्हें इस घटना के संबंध में सूचना न मिली होगी ? वे सेनापति हैं और राजपुरोहित भी। पाटलिपुत्र में कोई ऐसी घटना नहीं होती जिसकी सूचना उन तक नहीं पहुँचती। और हाँ, महाकान्तार के लोग तो उनकी सेवा में पहुँच ही गये होंगे।

**(नेपथ्य में पुष्यमित्र का स्वर)**

**पुष्यमित्र** यह नागदत्त और स्वामिदत्त का शिविर है ?

**उत्तर** हाँ, आचार्य !

**पुष्यमित्र** वे अपने कर्त्तव्य पर नियत हैं ?

**उत्तर** हाँ, आचार्य !

**(शंख की ध्वनि होती है। आचार्य पुष्यमित्र का प्रवेश)**

**नागदत्त** आर्य को प्रणाम !

**स्वामिदत्त** आर्य को प्रणाम !

**पुष्यमित्र** गुल्मपति ! सावधान हो ?

**नागदत्त** आर्य, सावधान हूँ !

**पुष्यमित्र** गुल्मपति स्वामिदत्त ! तुम्हारे परिवार के सभी व्यक्ति कुशलता से है ?

**स्वामिदत्त** **(व्यथित स्वर में)** आर्य ! मेरा निवेदन है... मेरा निवेदन है...

**पुष्यमित्र** सैनिकों का यह स्वर नहीं है, स्वामिदत्त ! (सूर्य की किरण की भाँति उनकी वाणी स्पष्ट और सीधी होनी चाहिए। सैनिकों की वाणी कवि की वाणी नही है, वह वैयाकरण की वाणी है जो नियमों से शासित होकर स्पष्ट कठ से निकलना जानती है।)

**स्वामिदत्त** क्षमा हो, आर्य !

पुष्यमित्र गुल्मपति स्वामिदत्त ! महाकान्तार कहाँ है, जानते हो ?

स्वामिदत्त पाटलिपुत्र के दक्षिण में, आर्य !

पुष्यमित्र दक्षिण नहीं, आग्नेय कोण में, स्वामिदत्त !

स्वामिदत्त क्षमा हो, आर्य ! मैं अधिक दिनों तक पांचाल में रहा हूँ।

पुष्यमित्र इसीलिए क्षम्य हो। महाकान्तार दक्षिण में नहीं, आग्नेय में है।

स्वामिदत्त दक्षिण और पूर्व के मध्य कोण में।

पुष्यमित्र और आग्नेय में अग्नि की ज्वाला धधक उठी है, जानते हो ?

स्वामिदत्त जानता हूँ, आर्य !

पुष्यमित्र गुल्मपति स्वामिदत्त ! तुम्हें ही इस आग की ज्वाला शान्त करनी है।

स्वामिदत्त यह आग की ज्वाला कान्तार के साथ-साथ मेरे परिवार. .

पुष्यमित्र भावुक मत बनो, स्वामिदत्त ! तुम सैनिक हो। (राजाज्ञा वज्र की तरह है। जिस दिशा में गिरना चाहती है, उस दिशा में गिरती है। कोई शक्ति उसकी दिशा और गति में परिवर्तन नहीं कर सकती।)

स्वामिदत्त सत्य है, आर्य !

पुष्यमित्र और महाकान्तार की जनता को दण्डित करने की व्यवस्था तुम्हें ही करनी होगी।

स्वामिदत्त जो आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र और एक अपमानिता नारी भी दण्डित हुई है।

स्वामिदत्त (तेजी से) धारिणी !

पुष्यमित्र तुम्हारी बहिन ! उसके आजीवन कारावास में उसे

जो यंत्रणाएं मिलनी है उनके निर्धारण के लिए सम्राट् की ओर से तुम नियुक्त हुए हो।

**स्वामिदत्त** (विकल होकर) आर्य !

**पुष्यमित्र** यह राजाज्ञा है। सम्राट् बृहद्रथ की आज्ञा शस्त्र की वह धार है जिस पर चलने का साहस किसी में नहीं है।

**स्वामिदत्त** आर्य ! एक प्रार्थना है।

**पुष्यमित्र** इस संबंध में कोई प्रार्थना स्वीकार नहीं होगी।

**स्वामिदत्त** मैं अपने सम्बन्ध में प्रार्थना करना चाहता हूँ, आर्य !

**पुष्यमित्र** निवेदन करो !

**स्वामिदत्त** मैं अपने पद-त्याग की प्रार्थना करना चाहता हूँ।

**पुष्यमित्र** सुनी जायगी। किन्तु तुम्हारी प्रार्थना के पूर्व ही राजाज्ञा हो चुकी है। राजाज्ञा की पूर्ति के अनन्तर ही तुम मुक्त किए जा सकते हो।

**स्वामिदत्त** मेरी बहन को जो यंत्रणाएँ दी जाने को हैं, आर्य, उनके...उनके लिए राजाज्ञा में कुछ संशोधन...

**पुष्यमित्र** सावधान, स्वामिदत्त ! सीमा से आगे बढ़ने का अधिकार किसी सैनिक को नहीं है। (नागदत्त से) नागदत्त ! तुम इस बात का ध्यान रखोगे कि स्वामिदत्त आत्महत्या नहीं करेगे।

**नागदत्त** जो आज्ञा आर्य !

**पुष्यमित्र** मै यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि स्वामिदत्त ने आत्महत्या का प्रयत्न किया तो वह उसकी बहिन धारिणी के भविष्य जीवन के लिए और भी यंत्रणाकारक सिद्ध होगा। इस बात का ध्यान स्वामिदत्त को रखना चाहिए। और हाँ, तुम्हें इस बात की सूचना है कि सम्राट् थोड़ी ही देर में सैन्य-निरीक्षण करेंगे ?

नागदत्त — इस बात की सूचना बहुत पहले से घोषित कर दी गई है, आर्य !

पुष्यमित्र — सभी गुल्मो के सैनिकों की उपस्थिति आवश्यक होगी, नागदत्त ! जो सैनिक अनुपस्थित होगा उसके दंड की व्यवस्था होगी।

नागदत्त — जो आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र — आर्य ! आज सम्राट् की इच्छानुसार एक विशेष बात होगी। सम्राट् चाहते हैं कि मेरी धनुर्विद्या का कौशल भी मेरे सैनिक देखें।

नागदत्त — आपकी धनुर्विद्या तो अद्वितीय है, आर्य ! आपका कौशल देखकर सैनिक कृतार्थ हो जावेंगे।

पुष्यमित्र — यह सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। यह मरे सैनिकों का मेरे प्रति स्नेह है।

नागदत्त — नहीं, आर्य ! ये आपके गुण हैं। प्रजा का असंतोष आपने दूर किया है। जन-संपत्ति की सुरक्षा आपके द्वारा हुई है। बाहरी शत्रु का भय आपने दूर किया है और सेना का वेतन आपने अपने कोष से दिया है। पिता भी अपने पुत्र का वैसा ध्यान नहीं रखता जैसा आपने रखा है।

पुष्यमित्र — यह सेनापति पुष्यमित्र का कर्त्तव्य है।

नागदत्त — समस्त सेना का आप पर पूर्ण विश्वास है, आर्य !

**(धनंजय प्रवेश करता है और पुष्यमित्र को प्रणाम करता है ।)**

धनंजय — आर्य की सेवा में प्रणाम स्वीकार हो !

पुष्यमित्र — कौन, धनंजय ! क्या समाचार है ?

धनंजय — आर्य ! मंजुगोपा सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा चाहती है।

**पुष्यमित्र** (सोचते हुए) मंजुगोपा! सम्राट् तांबूल-वाहिनी। उसकी गति सर्वत्र है। आने की आज्ञा सुनाओ!

**धनंजय** जो आज्ञा!

**पुष्यमित्र** स्वामिदत्त! मैं देखता हूँ कि राजाज्ञा ने तुम्हें मलीन कर दिया है, मैं अपने सैनिकों की निर्बलता से लज्जित हूँ।

**स्वामिदत्त** आर्य, मै क्षमा चाहता हूँ।

**पुष्यमित्र** (सैनिक की क्रियाशीलता सागर की वह तरंग है जो सेनापति की इच्छा-वायु का संकेत पाकर आकाश के हृदय में समा जाती है और दूसरे क्षण पृथ्वी पर गिरते हुए भी दिशाओं को अपने संगीत से निनादित कर देती है।) स्वामिदत्त! तुम्हें भी ऐसी शक्ति का परिचय देना है।

**स्वामिदत्त** मैं इससे अधिक शक्ति का परिचय देना चाहता हूँ, आर्य!

(धनंजय का पुनः प्रवेश)

**धनंजय** (प्रणाम करता हुआ) आर्य की सेवा में प्रणाम! मजुगोपा उपस्थित हैं, आर्य!

**पुष्यमित्र** उपस्थित हों!

**नागदत्त** मजुगोपा का इस स्थान पर आना रहस्यमय है, आर्य!

**पुष्यमित्र** मै एकान्त चाहूँगा, नागदत्त! तुम स्वामिदत्त के साथ बाहरी कक्ष में विश्राम लो।

**नागदत्त** जो आज्ञा!

**पुष्यमित्र** और सुनो! स्वामिदत्त की रक्षा हो।

**नागदत्त** जो आज्ञा!

**पुष्यमित्र** स्वामिदत्त! अपने विवेक से काम लो। तुम्हारा पुष्यमित्र पर विश्वास हो।

स्वामिदत्त — जो आज्ञा !

पुष्यमित्र — अब तुम दोनो शिविर के बाहरी द्वार पर स्थान ग्रहण करो।

नागदत्त — प्रणाम, आर्य !

स्वामिदत्त — प्रणाम, आर्य !

पुष्यमित्र — पाटलिपुत्र के सच्चे सैनिक बनो।

(नागदत्त और स्वामिदत्त का प्रस्थान)

पुष्यमित्र — मंजुगोपा का इस स्थान और इस समय पर आना भविष्य की भूमिका है···भविष्य की···भूमिका। (सोचते हुए टहलते है।)

(मंजुगोपा का प्रवेश)

मंजुगोपा — आर्य की सेवा मे मंजुगोपा का प्रणाम स्वीकार हो।

पुष्यमित्र — सम्राट् की कृपापात्री बनो।

मंजुगोपा — आर्य ! सम्राट् ने एक विशेष इच्छा प्रकट की है। उसकी पूर्ति की आशा से मै आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।

पुष्यमित्र — सम्राट् की इच्छा मेरा गौरव है, मंजुगोपा !

मंजुगोपा — आर्य ! सम्राट् की इच्छा यह है कि आज आपकी धनुर्विद्या का कौशल इस प्रकार हो कि सम्राट् के परम-मित्र तेलियस भी प्रसन्न हो।

पुष्यमित्र — मै इसका पूर्ण प्रयत्न करूँगा, मंजुगोपा, कि सम्राट् और उनके परम-मित्र तेलियस जैसी धनुर्विद्या की आशा मुझसे करते है उससे भी श्रेष्ठ धनुर्विद्या का प्रदर्शन मैं उनके समक्ष कर सकूँ।

मंजुगोपा — आर्य ! सम्राट् जानना चाहते हैं कि आप कैसी धनुर्विद्या का प्रदर्शन करेंगे।

पुष्यमित्र — यह सम्राट् की इच्छा पर निर्भर है।

**मंजुगोपा** आर्य ! क्षमा करें। सम्राट् कुछ संकेत चाहते हैं।

**पुष्यमित्र** तो उनसे निवेदन करो, देवि, कि मैं शिविर-भूमि में लक्ष्य-केन्द्र पर चारों दिशाओं में चार काष्ठ-दंड गाड़ दूँगा, जिसके ऊपरी सिरे सुलगते हों। मेरे बाण की गति इतनी तीव्र होगी कि प्रत्येक बाण के वायु-वेग से प्रत्येक दिशा के सुलगते काष्ठ-दंडों से ज्वालायें निकलने लगें और अन्त में चारों ज्वालाएँ मिलकर एक हो जावे।

**मंजुगोपा** यह कौशल सराहनीय है, आर्य ! बाण-विद्या आपको पाकर कृतार्थ हुई है।

**पुष्यमित्र** मंजुगोपे ! सम्राट् की प्रशंसा के लिए शब्द शेष रहें, इसका ध्यान रहे।

**मंजुगोपा** सेनापति होकर भी आप जनता के हृदय के सम्राट् हैं। पाटलिपुत्र में ऐसा कोई सेनापति नहीं हुआ। सम्राट् ने एक इच्छा और प्रकट की है, आय !

**पुष्यमित्र** मैं सुनने का अभिलाषी हूँ।

**मंजुगोपा** उसे स्पष्ट करने में मुझे लज्जा और ग्लानि हो रही है।

**पुष्यमित्र** मंजुगोपे ! यह सम्राट् की इच्छा का अपमान है। उनकी प्रत्येक इच्छा स्पष्ट कंठ से कही जाने की शक्ति रखती है। (लज्जा और ग्लानि के बादल से उनकी इच्छा की विद्युत छिप नहीं सकती।) सम्राट् की आज्ञा स्पष्ट कहो।

**मंजुगोपा** आर्य ! क्षमा करें। सम्राट् ने इच्छा प्रकट की है कि इस अवसर पर उनके परम-मित्र तेलियस का मनोरंजन भी होना चाहिए।

**पुष्यमित्र** क्या मेरी धनुर्विद्या उनका यथेष्ट मनोरंजन न कर सकेगी ?

**मंजुगोपा** उससे तो अनिर्वचनीय मनोरंजन होगा ही, किन्तु नायक तेलियस इसके अतिरिक्त भी मनोरंजन चाहते हैं।

पुष्यमित्र किस प्रकार का?

मंजुगोपा वे नृत्य देखना चाहते हैं।

पुष्यमित्र किसका?

मंजुगोपा धारिणी का।

पुष्यमित्र धारिणी का? वह धारिणी जिसका नायक तेलियस ने अपहरण करना चाहा था?

मंजुगोपा किन्तु नहीं कर सका। उनका कथन है कि आर्य पुष्यमित्र के संकेत से कुछ श्रमिकों ने बीच में बाधा डाल दी।

पुष्यमित्र मेरे संकेत से?

मंजुगोपा हाँ, आर्य! क्षमा हो।

पुष्यमित्र नायक तेलियस सम्राट् के परम-मित्र हैं। वे सब कुछ कह सकते हैं। उनका अधिकार है कि वे अपनी वाणी का प्रयोग चाहे जिस प्रकार से करें।

मंजुगोपा जनता भी ऐसा सोचती है, आर्य!

पुष्यमित्र सम्राट् की वन-यात्रा के कारण मेरा शिविर महाकान्तार में रहना आवश्यक था। यदि मेरे शिविर के समीप श्रमिकों ने अपहरण में बाधा डाली तो नायक तेलियस को मेरे संकेत की संभावना में विश्वास हो सकता है; किन्तु सम्राट से निवेदन करने से पूर्व नायक तेलियस को शासन-व्यवस्था के अनुसार सेनापति से उत्तर माँगना चाहिए और सेनापति पुष्यमित्र उसका उत्तर देता।

मंजुगोपा नायक तेलियस सम्राट् के मित्र हैं और सम्राट् अपने मित्र की इच्छा का बड़ा आदर करते हैं। व्यवस्था के प्रतिकूल भी सम्राट् नायक के कथन पर ध्यान देंगे।

पुष्यमित्र यह सम्राट् की इच्छा।

मंजगोपा फिर, आर्य! धारिणी के नृत्य की व्यवस्था हो सकेगी?

**पुष्यमित्र** अवश्य होगी। सम्राट् से निवेदन करो कि अपमानित होने पर भी धारिणी नायक तेलियस के मनोरंजन के लिए अवश्य नृत्य करेगी; किन्तु उसका नृत्य मेरी धनुर्विद्या के प्रदर्शन के बाद होगा।

**मंजुगोपा** यदि सम्राट् कारण जानना चाहेंगे तो मैं क्या निवेदन करूँगी, आर्य!

**पुष्यमित्र** सम्राट् की सेवा में यह उत्तर निवेदन करना कि पहले सेनापति पुष्यमित्र का सौभाग्य होना चाहिए कि वह अपने सम्राट् और उनके मित्र नायक तेलियस को प्रसन्न करे। उसके बाद अन्य नागरिकों के सौभाग्य की बात है।

**मंजुगोपा** जैसी आज्ञा, आर्य! मै अब जाने की अनुमति चाहती हूँ। सम्राट् ने शीघ्र ही यहाँ आने की इच्छा प्रकट की है।

**पुष्यमित्र** निवेदन करो कि उनके स्वागत की पूर्ण व्यवस्था है।

**मंजुगोपा** जैसी आज्ञा! आर्य की सेवा में प्रणाम करती हूँ।

**पुष्यमित्र** सम्राट् की कृपापात्री बनो।

**(मंजुगोपा का प्रस्थान)**

**पुष्यमित्र** **(टहलते हुए)** नायक तेलियस का सन्देह...। सम्राट् का सेनापति पुष्यमित्र यवन तेलियस के मनोरंजन के लिए धनुर्विद्या का प्रदर्शन करें...। अपमानिता नारी को और भी अधिक लांछित करने के लिए उसके नृत्य की माँग करे...। सम्राट् प्रजा से अधिक यवन को सम्मान दें...। उसका मनोरंजन प्रजा की सुरक्षा से अधिक मूल्य रखता है...अधिक मूल्य रखता है...। पर मेरे बाणों का कौतूहलपूर्ण प्रदर्शन और धारिणी का नृत्य अवश्य होगा...अवश्य होगा...।

(पुकारकर) धनंजय !

**धनंजय** आदेश, आर्य !

**पुष्यमित्र** गुल्मपति नागदत्त और स्वामिदत्त को यहाँ आने की सूचना दो।

**धनंजय** जो आज्ञा, आर्य !

**पुष्यमित्र** सम्राट् वृहद्रथ का आदेश...धारिणी का नृत्य... (आग पानी की तरलता प्राप्त करे और पानी आग की उष्णता में अपने को उतारने की चेष्टा करे।)

(नागदत्त और स्वामिदत्त का प्रवेश)

**नागदत्त** आर्य की सेवा मे प्रणाम !

**स्वामिदत्त** आर्य की सेवा में प्रणाम !

**पुष्यमित्र** पाटलिपुत्र के यशस्वी सैनिक बनो । स्वामिदत्त ! मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारे पास सैनिक शिष्टता का विवेक है; तुम भावुक नही हो। मैंने जान-बूझ कर तुम्हें नागदत्त के साथ रहने का अवसर दिया। तुम चाहते तो आत्महत्या कर सकते थे। नागदत्त ! स्वामिदत्त ने आत्महत्या की इच्छा प्रकट तो नही की ?

**नागदत्त** नहीं, आर्य !

**पुष्यमित्र** स्वामिदत्त के मन की प्रवृत्ति किस दिशा में थी ?

**नागदत्त** सत्ता के प्रति ही उनके हृदय में आक्रोश था।

**पुष्यमित्र** स्वामिदत्त ! सत्ता किसी के साथ पक्षपात नहीं कर सकती। तुम स्वस्थ बनो। हाँ, मंजुगोपा ने सूचना दी है कि सम्राट् अपने परम-मित्र तेलियस के साथ शीघ्र ही सैन्य-निरीक्षण के लिए आवेंगे। किन्तु सैन्य-निरीक्षण के पूर्व वे मेरी धनुर्विद्या का कौशल भी देखना चाहेंगे।

**नागदत्त** उसका निर्देश आर्य ने किया था।

पुष्यमित्र इस कौशल के प्रदर्शन की सामग्री तुम्हें उपस्थित करनी होगी, स्वामिदत्त!

स्वामिदत्त मैं आज्ञा के लिए प्रस्तुत हूँ।

पुष्यमित्र सम्राट् जिस मंच पर तेलियस के साथ आसन ग्रहण करेंगे उससे तीस अक्ष की दूरी पर पूर्व की ओर बीस अंगुष्ठ-वर्ग में चारों कोनों पर अंगारों के रूप में सुलगते हुए काष्ठ-दंड खड़े करने होंगे। मेरे चार बाणों के वेग से उत्पन्न वायु से इन चारों काष्ठ-दंडों में ज्वालाएँ जलेंगी।

नागदत्त यह आश्चर्यजनक बाण-विद्या है, आर्य!

स्वामिदत्त आज यह देखकर हम सब कृतार्थ होंगे। मैं शीघ्र ही इस सामग्री की व्यवस्था करूँगा।

पुष्यमित्र अच्छा जाओ, गुल्मपति स्वामिदत्त! इसकी पूर्ण व्यवस्था करो।

स्वामिदत्त आर्य की सेवा में प्रणाम! **(प्रस्थान)**

पुष्यमित्र **(स्वामिदत्त के जाने की दिशा में देखते हुए)** गये। मुझे स्वामिदत्त के मनोभावों से सहानुभूति है। (राजनीति मस्तिष्क का संकेत है और मनोभाव हृदय का। मस्तिष्क और हृदय दो भिन्न दिशाओं में नहीं चल सकते।)

नागदत्त आपको हृदय की सही पहिचान है, आर्य!

पुष्यमित्र (सोचते हुए) नागदत्त! तुम्हें भी एक विशेष प्रदर्शन की सामग्री उपस्थित करनी है।

नागदत्त आज्ञा, आर्य!

पुष्यमित्र जिस प्रकार सम्राट् के मित्र नायक तेलियस ने मेरे बाणों की कला देखने की इच्छा प्रकट की है उसी प्रकार एक

और भी कला देखने की इच्छा उन्होंने प्रकट की है जिसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त हो गई है।

नागदत्त उस कला का नाम सुनने की अभिलाषा है, आर्य !

पुष्यमित्र नृत्य-कला।

नागदत्त सैनिकों की शिविर-भूमि में ?

पुष्यमित्र हाँ, सैनिकों की शिविर-भूमि में। राजमंच के समीप।

नागदत्त और नृत्य-कला का प्रदर्शन करना किसका सौभाग्य होगा, आर्य !

पुष्यमित्र धारिणी का।

नागदत्त (चौंककर) धारिणी का ?

पुष्यमित्र हाँ, धारिणी का। नायक तेलियस जिसका अपहरण नही कर सका। इसलिए वे सैनिकों के सामने धारिणी को नृत्य के लिए विवश कर उसे लांछित करना चाहते है।

नागदत्त आर्य ! क्षमा हो। किन्तु धारिणी पहले ही लांछित हो चुकी है। वह नृत्य कैसे करेगी ?

पुष्यमित्र उसे नृत्य करना होगा, नागदत्त !

नागदत्त आपके आदेश की अवहेलना नहीं हो सकती; किन्तु धारिणी के मन में नृत्य करने की भावना का उदय कैसे हो सकेगा, आर्य !

पुष्यमित्र होगा, अवश्य होगा। सेनापति पुष्यमित्र की बाण-विद्या से जब अँगारे ज्वालाएँ उगल सकते हैं तो क्या धारिणी नृत्य नही कर सकेगी ? वह नृत्य करेगी, अवश्य ही करेगी। मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं हो सकेगी। मच के समीप जो मेरा शिविर है, उसके अलिन्द पर तुम्हें धारिणी को उपस्थित करना होगा।

नागदत्त आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

पुष्यमित्र धारिणी तुम्हारे नियंत्रण में है?

नागदत्त आर्य, वह मेरे नियंत्रण में है।

पुष्यमित्र तो उसे निश्चित समय पर अलिन्द में उपस्थित करो।

नागदत्त जो आज्ञा, आर्य!

पुष्यमित्र तुम जा सकते हो। मैं अपने धनुर्वाण की व्यवस्था करूँगा।

(पुष्यमित्र चुपचाप टहलने लगते हैं।)

संगीत

(पृष्ठभूमि में कोलाहल। उभरी हुई आवाज में "सम्राट् वृहद्रथ की जय", "सम्राट् वृहद्रथ की जय", "सम्राट् बृहद्रथ की जय"। सैनिक-संगीत का प्रारम्भ। तूर्य, शंख और मृदंग की सम्मिलित ध्वनि। धीरे-धीरे कोलाहल शान्त हो जाता है। सम्राट् वृहद्रथ के अट्टहास की ध्वनि)

(सम्राट् वृहद्रथ की अंगरक्षिका घोषणा करती है)

अंगरक्षिका सम्राट् आज के पर्व पर सैनिको से यह आदेश करने की आज्ञा देते है, "मेरे पाटलिपुत्र के सैनिको! आज इस महान् शुभ अवसर पर तुम्हें न केवल मेरी जय की घोषणा करनी है, वरन् मेरे परम-मित्र नायक तेलियस की जय की घोषणा भी करनी है।"

("नायक तेलियस की जय" का घोष)

अंगरक्षिका सम्राट् की वाणी है कि सैनिको! यद्यपि नायक तेलियस हमारे देश के नहीं हैं तथापि उन्होने हमसे वैसी मित्रता की है जैसे गंगा से शोण का संगम हुआ है।

तेलियस — (विकृत भाषा में) यह महाराज के मित्रता के परिणाम हैं।

(सम्राट् और नायक तेलियस की हँसी की ध्वनि)

अंगरक्षिका — सम्राट् की वाणी है कि सैनिको! जनता के मन में बुरी भावना उत्पन्न करने के लिए महाकान्तार के कुछ लोगों ने एक स्त्री के अपहरण की बात फैला दी है। यह बात नितान्त मिथ्या है।

(सैनिकों में कानाफूसी—"यह सत्य है," "यह सत्य है।")

अंगरक्षिका — सम्राट् की वाणी है कि नायक तेलियस महाकान्तार के सौन्दर्य का निरीक्षण करने गये थे। विदेशी होने के कारण लोगो ने उन पर लाछन लगाया है कि उन्होंने एक नारी का अपहरण किया।

(सैनिकों का मन्द स्वर—"क्या यह सत्य है!", "क्या यह सत्य है।")

अंगरक्षिका — सम्राट् की वाणी है कि इस लांछन को विश्वसनीय बनाने के लिए एक वृद्धा ने राज्य के सिह-द्वार को अपने मस्तक के रक्त से कलकित किया है।

(सैनिकों का मन्द स्वर—"वह धारिणी की माता है", वह धारिणी की माता है," "धारिणी की माता है।")

अंगरक्षिका — सम्राट् की वाणी है कि उस वृद्धा के सम्बन्ध में न्यायाधिकरण में विचार होगा। सम्राट् का आदेश है कि सैनिको! भविष्य में इस प्रकार का काण्ड उपस्थित कर जनता के हृदय में व्यर्थ की आशंका उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों के लिए कठिन से कठिन दंड की व्यवस्था होगी।

(सैनिकों में सन्नाटा)

वृहद्रथ — आर्य पुष्यमित्र उपस्थित हैं।

पुष्यमित्र (उपस्थित होकर) मैं उपस्थित हूँ, सम्राट्!

वृहद्रथ आर्य पुष्यमित्र! हमारे परम-मित्र नायक तेलियस की इच्छा की सूचना तुम्हें प्राप्त हो चुकी?

पुष्यमित्र प्राप्त हो चुकी, सम्राट्!

वृहद्रथ क्या उनके मनोरंजन के लिए तुम्हारी धनुर्विद्या के प्रदर्शन की सारी व्यवस्था हो चुकी?

पुष्यमित्र सारी व्यवस्था हो चुकी, सम्राट्!

वृहद्रथ और जिस स्त्री के अपहरण के सम्बन्ध में कुछ विद्रोहियों ने अपना कंठ-स्वर ऊँचा किया है, उसके नृत्य की व्यवस्था है?

पुष्यमित्र व्यवस्था आदि है, सम्राट्! सम्राट् के मंच के सामने जो अलिन्द है उस पर वह स्त्री उपस्थित की गई है।

वृहद्रथ आर्य पुष्यमित्र! जिस वृद्धा ने अपने रक्त से हमारे सिंह-द्वार को कलंकित किया है, उसके दण्ड की व्यवस्था नायक तेलियस ने जिस प्रकार दी है, उसकी घोषणा हुई?

पुष्यमित्र वह घोषणा हो चुकी, सम्राट्!

वृहद्रथ वह घोषणा क्या है?

पुष्यमित्र सम्राट्! वह घोषणा है कि पुष्यमित्र का चतुर्थ बाण वृद्धा के मस्तक के उस भाग को बेध देगा जहाँ से रक्त की धारा बही थी और जिसने सम्राट् के नगर का सिंह-द्वार कलंकित किया था।

वृहद्रथ यह घोषणा कहाँ हुई है, आर्य!

पुष्यमित्र महाकान्तार में। जहाँ की जनता ने विद्रोह किया था और जहाँ राजदण्ड के आतंक की आवश्यकता है।

तेलियस (हँसकर) आपका सेनापति अच्छा वस्तु है, सम्राट्!

वृहद्रथ आर्य पुष्यमित्र! धनुर्विद्या का कौशल प्रारम्भ हो!

(कंठों का हल्का-सा मिला-जुला स्वर)

**वृहद्रथ** इस बात की घोषणा और करो विलोमा, कि धनुर्विद्या के कौशल के अनन्तर सम्राट् नायक तेलियस के साथ नृत्य देखेंगे जिससे सैनिकों का मनोरंजन होगा। यह भी कहो कि सम्राट् अपने सैनिकों के मनोरंजन का कितना ध्यान रखते हैं। उसके अनन्तर सैन्य-निरीक्षण करेंगे।

**अंगरक्षिका** सैनिको! धनुर्विद्या के कौशल के अनन्तर सम्राट् नायक तेलियस के साथ नृत्य के समारोह का प्रबन्ध करेंगे। सैनिकों के मनोरंजन का ध्यान रखने में सम्राट् की उदारता सराहनीय है। नृत्य से मनोरंजन कराने के उपरान्त सम्राट् सैन्य-निरीक्षण करेंगे। सबसे प्रथम आर्य पुष्यमित्र अपनी धनुर्विद्या का कौशल प्रदर्शित करेंगे।

**वृहद्रथ** यह और कहो विलोमा, कि सम्राट् की इच्छा है कि आर्य पुष्यमित्र का आदर्श प्रत्येक सैनिक का आदर्श होना चाहिए।

**अंगरक्षिका** सैनिको! सम्राट् की वाणी है कि आर्य पुष्यमित्र का आदर्श प्रत्येक सैनिक का आदर्श हो।

**कुछ स्वर** सब सैनिकों का आदर्श होगा।

**वृहद्रथ** प्रारम्भ हो।

**(जन-रव कुछ अधिक जोर से सुनाई पड़ता है।)**

**पुष्यमित्र** **(सामने आकर)** गुरुदेव को प्रणाम! बाणों की शक्ति की वन्दना **(बाणों को चूमते हैं)** सैनिको! सम्राट् की आज्ञानुसार आप मेरी बाण-विद्या का कौशल देखें। आपके समक्ष लक्ष्य-केन्द्र पर चार सुलगते हुए काष्ठ-दण्ड है जिनके ऊपरी भाग ने अँगारों का रूप ले लिया है। मेरे बाणों की गति से कंपित वायु उन अँगारों से

ज्वालाएँ निकाल सकेगी। सबसे पहले पूर्व दिशा का काष्ठ-दण्ड ज्वाला से जलेगा। **(बाणों को प्रणाम कर)** जय गुरुदेव !

**(बाण के चलने की प्रखर ध्वनि। पूर्व दिशा के काष्ठ-दण्ड से ज्वाला उठती है। जनता की हर्ष ध्वनि—"धन्य, धन्य! आग की ज्वाला जल उठी! आग की ज्वाला जल उठी!")**

**वृहद्रथ** साधुवाद !

**तेलियस** साधुवाद !

**अंगरक्षिका** सम्राट् और तेलियस की वाणी आर्य पुष्यमित्र के कौशल की सराहना करती है।

**पुष्यमित्र** मैं इस सराहना के लिए सम्राट्, नायक तेलियस और जनता का कृतज्ञ हूँ। अब उत्तर दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला उठेगी। **(बाणों को प्रणाम कर)** जय गुरुदेव !

**(बाण के चलने की प्रखर ध्वनि। उत्तर दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला)**

**(जनता का कोलाहल—"वह आग की ज्वाला उठी! वह आग की ज्वाला उठी!")**

**वृहद्रथ** साधुवाद, आर्य पुष्यमित्र !

**अंगरक्षिका** सम्राट् की वाणी आर्य पुष्यमित्र के कौशल की सराहना करती है।

**पुष्यमित्र** मैं इस सराहना के लिए सम्राट् का कृतज्ञ हूँ।

**तेलियस** हम भी सराहना करता हूँ।

**पुष्यमित्र** धन्यवाद ! अब पश्चिम दिशा के काष्ठ-दण्ड मे ज्वाला उठेगी। **(बाण को प्रणाम कर)** जय गुरुदेव !

**(बाण के चलने की प्रखर ध्वनि। जनता का तुमुल**

हर्ष। "धन्य है, "धन्य है!" की ध्वनि। "आग की ज्वाला जल उठी" की ध्वनि)

**वृहद्रथ** साधुवाद, आर्य पुष्यमित्र!

**अंगरक्षिका** सम्राट् की वाणी आर्य पुष्यमित्र की सराहना करती है।

**तेलियस** मेरी सराहना भी स्वीकार होगी।

**पुष्यमित्र** मै सराहना के लिए कृतज्ञ हूँ। अब दक्षिण दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला उठनी चाहिए। राजाज्ञा है कि मेरा यह बाण दक्षिण दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला उत्पन्न करते हुए वृद्धा के मस्तक को बेध दे जिसने अपने रक्त से राज्य के सिंह-द्वार को कलंकित किया है। दक्षिण दिशा का बाण मेरे धनुष पर है। किन्तु सैनिको! मै यह पूछना चाहता हूँ कि राज्य के सिंह-द्वार को कलुपित करने का अपराध किसने किया है—वृद्धा ने किया है अथवा स्वयं सम्राट् ने? **(सन्नाटा)** किसका मस्तक इस बाण का लक्ष्य है?

**वृहद्रथ** (जोर से) यह राजद्रोह है! यह राजद्रोह है! विलोमा, घोषणा करो कि यह राजद्रोह है।

**अंगरक्षिका** सम्राट की वाणी है कि...

**पुष्यमित्र** पुष्यमित्र की वाणी है कि यह राजा की ओर से प्रजाद्रोह है। जिस राजा ने प्रजा की रक्षा नही की, नारियों का अपहरण होने दिया, सैनिकों का वेतन नहीं दिया, निरपराधियों को दंडित किया, अपने विलास की छाया में प्रजा को कष्ट दिया, क्या उस राजा के प्रति कभी राजद्रोह हो सकता है?

**सैनिकों का स्वर** नही हो सकता, नही हो सकता।

**वृहद्रथ** अरे, यह क्या! यह षड्यन्त्र है। विलोमा! घोषणा

करो कि यह षड्यन्त्र है। यह षड्यन्त्र है। **(पीछे घूमकर)** अरे, विलोमा कहा है? मेरी अंगरक्षिका विलोमा कहाँ है?

**पुष्यमित्र** अब विलोमा को घोषणा करने का अधिकार नहीं है, सम्राट्! जब मेरे बाणों से अग्नि की ज्वाला जल सकती है तो मेरे बाणों की दिशा देखकर विलोमा का कंठ भी रुद्ध हो सकता है। समस्त सैनिक शान्त रहेंगे। मैं सम्राट् वृहद्रथ से यही पूछना चाहता हूँ कि दुष्ट और विलासी म्लेच्छ तेलियस के पैशाचिक मनोरंजन के लिए एक निरोह और निरपराध लाछिता नारी को नृत्य की आज्ञा देना कौन राजधर्म है?

**तेलियस** हम यहाँ नाही ठहरूँगा। हमको नीद आ रहा है। हम सोऊँगा।

**(तेलियस उठकर जाना चाहता है।)**

**पुष्यमित्र** वहीं बैठे रहो, तेलियस! नही तो यह बाण पहले तुम्हें सदैव के लिए सुला देगा।

**तेलियस** सम्राट् पुष्यमित्र! कैसा-कैसा बाण चलाने को कहते! हम तो तुम्हारे सिहासन के नीचे सो जाऊँगा। **(सिंहासन के नीचे छिपना चाहता है।)**

**पुष्यमित्र** अपने स्थान पर रहो, तेलियस! सम्राट् स्वयं अपनी रक्षा के लिए वही स्थान खोजेंगे। मौर्य चन्द्रगुप्त और अशोक की परम्परा को कलुषित करने वाले हिंस्र-पशु के लिए सम्राट् का यह आवरण बहुत ओछा है।

**वृहद्रथ** सैनिको, सैनिको! अपने सम्राट् की रक्षा करो, यह राज-द्रोह है।

**पुष्यमित्र** यह राजद्रोह किसी भी प्रकार नहीं है, वृहद्रथ! यह

राजसत्ता है। ये सैनिक तुम्हारे नहीं है। ये सैनिक सेनापति पुष्यमित्र के है; सेनापति पुष्यमित्र के जो उनका पिता है। यह पाटलिपुत्र वृहद्रथ को सम्राट् नहीं प्रवचक और दस्यु समझता है।

वृहद्रथ **(घबराकर)** सैनिको, मेरी रक्षा करो।

पुष्यमित्र **(दृढ़ता से)** कोई सैनिक तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा (क्योंकि जिस राजाज्ञा की घोषणा मैने अभी तक तुम्हारी ओर से सैनिकों को सुनाई है उस राजाज्ञा के यन्त्र ने सैनिकों के शरीर से राजभक्ति से भरे रक्त को एक-एक बूँद में सिमिट कर निकल जाने दिया है। )

तेलियस हमको––मुझको बचाओ, सेनापति ! हम क्षमा माँगता हूँ।

वृहद्रथ मित्र तेलियस ! तुम भी हमारा साथ छोड़ दोगे ?

तेलियस हमारा रक्षा तुम नहीं करोगे तो सेनापति अवश्य करेंगे। हमारा रक्षा करो, सेनापति, हमारा रक्षा करो।

वृहद्रथ **(घबराकर)** तब क्या मै अकेला हूँ ?

पुष्यमित्र तुम अकेले नहीं रहोगे, वृहद्रथ ! आज इस सैनिक-शिविर के बीच तुम अपने को न्यायाधिकरण मे समझो। मैं यह पूछना चाहता हूँ, वृहद्रथ, कि तुम्हारे द्वारा जन-सम्पत्ति की सुरक्षा हुई है ? उत्तर दो !

वृहद्रथ **(मौन है।)**

पुष्यमित्र क्या बाहरी शत्रुओं का भय तुम्हारे शासन मे दूर हुआ ? बोलो !

वृहद्रथ **(मौन है।)**

पुष्यमित्र क्या सैनिकों का वेतन महीनों उन्हे तुम्हारे कोप से दिया जा सका ? उत्तर दो !

**वृहद्रथ** मैं...मैं...मैं...मै कोई उत्तर नहीं दे सकता। हाय! मैं कहाँ जाऊँ?

**पुष्यमित्र** वृहद्रथ! दक्षिण दिशा के काष्ठ-दण्ड की ओर चलने वाले मेरे बाण के साथ तुम दक्षिण दिशा जाओ, जो यमराज की दिशा है। निरपराध धारिणी के लांछित होने पर भी उसके अत्याचारी को दण्ड न देकर उसे मित्र बनाना क्या पाटलिपुत्र की प्रजा का सबसे बड़ा अपमान नहीं है? और उसी अत्याचारी के मनोरजन के लिए धारिणी को नृत्य के लिए आज्ञा देना क्या राजधर्म का सबसे बड़ा कलंक नही है? धारिणी तब नृत्य करेगी जब ऐसा राजधर्म नष्ट हो जायगा।

**वृहद्रथ** मेरी रक्षा करो, पुष्यमित्र! मै अपने प्राणो की भिक्षा माँगता हूँ।

**पुष्यमित्र** सैनिको! राजा भिक्षा माँग रहा है। क्या तुम लोग उसे भिक्षा दोगे?

**सैनिकों का स्वर** नही, नही। भिक्षा नही दी जा सकेगी।

**पुष्यमित्र** न्यायाधिकरण ने भिक्षा नही दी, वृहद्रथ! अब तुम्हारा मस्तक मेरे बाण का लक्ष्य होगा। तुम कही भी छिपने की चेष्टा कर सकते हो।

**तेलियस** (**सिंहासन के नीचे छिपने की चेष्टा करते हुए**) हम तो यहाँ छिपूँगा।

**पुष्यमित्र** वृहद्रथ! तेलियस के समान तुम भी छिपने की चेष्टा कर सकते हो। मेरे बाण का यह कौशल होगा कि तुम चाहे जहाँ छिपो, वह तुम्हारे मस्तक को अवश्य बेध देगा। तुम एक बार फिर छिपने की चेष्टा कर सकते हो।

**वृहद्रथ** (पुकारकर) विलोमा !

**पुष्यमित्र** तुम्हारी पुकार कोई नहीं सुन सकता, वृहद्रथ ! विलोमा अब प्रजा की अंगरक्षिका है। तुमने राजदण्ड की छाया मे धर्म पर अनत आघात किये हैं। तुमने यज्ञों को निर्वासित कर दिया है किन्तु आज मैंने यज्ञ की पुनः प्रतिष्ठा की है। देख रहे हो ये काष्ठ-दण्ड, जो तीन दिशाओं से यज्ञ की ज्वालाएँ उत्पन्न कर रहे है ? केवल चौथी दिशा शेष है। तुम्हारे मस्तक का रक्त लेकर मेरा बाण चौथी दिशा में भी यज्ञ की अग्नि उत्पन्न करेगा और तुम्हारे मस्तक की बलि लेकर मेरा यह यज्ञ पूर्ण होगा। तब सेनापति पुष्यमित्र के द्वारा वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा पाटलिपुत्र में फिर एक बार होगी। सावधान !

**(बाण चलने का तीव्रस्वर। एक क्षण बाद ही भीषण कराह)**

**वृहद्रथ** आह ! आह !! आह !!!

**(सेना के द्वारा "सेनापति पुष्यमित्र की जय" का घोष)**

**पुष्यमित्र** (उमंग से) इस मस्तक के रक्त से पाटलिपुत्र में स्वर्ण और श्री की प्रतिष्ठा एक बार फिर होगी। और धारिणी इस राजधर्म की विडम्बना के दूर होने पर अपने नृत्य मे स्वर्ण-श्री को निमत्रण देगी। धारिणी ! मैने कहा था कि धारिणी का नृत्य अवश्य ही होगा। तुम्हारा नृत्य प्रारम्भ हो।

**धारिणी** पाटलिपुत्र की स्वर्ण-श्री अमर हो !

**(धारिणी के नृत्य की ध्वनि होती है।)**

**(धीरे-धीरे नृत्य की ध्वनि वायु में विलीन हो जाती है।)**

# शिवाजी का सच्चा स्वरूप

सेठ गोविन्ददास

**पात्र**

शिवाजी : प्रसिद्ध मराठा वीर

मोरोपंत पिगले : पेशवा

आबाजी सोनदेव : शिवाजी का एक सेनापति

**स्थान** : राजगढ़ दुर्ग का एक दालान

समय : सन १६४८ ई० सन्ध्या।

[दाहिनी ओर दालान का कुछ हिस्सा दिखायी देता है। दालान की छत पत्थर के खंभों पर है। उसके पीछे की दीवार भी पत्थर की ही है। दालान के पीछे की ओर दाहिनी तरफ, दूर पर, गढ़ की सफ़ील और कुछ बुर्ज दीख पड़ती हैं। बाईं तरफ सह्याद्रि-पर्वत-माला की शिखरावली दृष्टिगोचर होती है। कुछ शिखरों की ओट में सूर्य अस्त हो रहा है, जिसके प्रकाश से सारा दृश्य आलोकित है। दालान के सामने किले का खुला मैदान है। मैदान में एक ऊंचे स्तंभ पर भगवाँ रंग का मराठा झण्डा फहरा रहा है। दालान में जाजम बिछी है, उस पर कीनख्वाब की गद्दी पर मसनद के सहारे शिवाजी वीरासन से किसी विचार में मग्न हैं। उनके स्वरूप और वेश-भूषा के संबंध में कुछ भी लिखना इसलिए निरर्थक है कि एक भी भारतीय ऐसा नहीं जो उससे परिचित न हो। दालान के बाहर शस्त्रों से सुसज्जित दो मावली शरीर-रक्षक खड़े हुए है। बाईं ओर से मोरोपंत पिंगले का प्रवेश। मोरोपंत अधेड़ अवस्था का गेंहुए वर्ण का, ऊँचा-पूरा व्यक्ति है। वेश-भूषा शिवाजी से मिलती-जुलती है; केवल सिर की पगड़ी में अन्तर है। मोरोपंत की पगड़ी शिवाजी की पगड़ी के सदृश मुगल ढंग की न होकर मराठी तरज की है। उसके मस्तक पर त्रिपुण्ड भी है।]

मोरोपंत — (अभिवादन कर) श्रीमन्त सरकार; सेनापति आवाजी सोनदेव कल्याण प्रान्त को जीत, वहाँ का सारा खजाना लूट कर आ गये है।

शिवाजी — (चौक कर) अच्छा! (मोरोपंत की ओर देख कर)

वैठो, पेशवा, बड़ा शुभ सवाद लाये। आवाजी सोनदेव है कहाँ ?

**मोरोपंत** (वीरासन पर बैठकर) श्रीमन्त की सेवा में अभी उपस्थित हो रहे हैं।

**कुछ देर निस्तब्धता। शिवाजी और मोरोपंत दोनों उत्सुकता से बाईं ओर देखते हैं। कुछ ही देर में आवाजी सोनदेव बाईं ओर से आता हुआ दिखाई देता है। उसके पीछे हम्मालों का एक भारी झुण्ड है। हर हम्माल के सिर पर एक हारा [बड़ा भारी टोकना है। हम्मालों के झुण्ड के पीछे एक पालकी है। पालकी बंद है। आवाजी सोनदेव भी अधेड़ अवस्था का ऊँचा-पूरा मनुष्य है। वेश-भूषा मोरोपंत के सदृश है। आवाजी सोनदेव दालान में आकर शिवाजी का अभिवादन करता है। हम्मालों का झुण्ड और पालकी दालान के बाहर रहते हैं।]**

**शिवाजी** वैठो, आवाजी, कल्याण-विजय पर तुम्हें बधाई है!

**आवाजी सोनदेव** (**बैठते हुए**) बधाई है, श्रीमन्त सरकार को!

**शिवाजी** कहो पैदल में मावलियों ने अधिक वीरता दिखाई या हेट-करियों ने ?

**आवाजी सोनदेव** दोनों ने ही, श्रीमन्त सरकार!

**शिवाजी** और घुड़सवारों मे बारगिरों ने या शिलेदारों ने ?

**आवाजी सोनदेव** इनमें भी दोनों ने ही, श्रीमन्त।

**शिवाजी** सेना के अधिपति कैसे रहे ?

**आवाजी सोनदेव** पैदल के अधिपति—नायक, हवालदार, जुमालदार और एक-हजारी, तथा घुड़सवारों के अधिपति—हवालदार, जुमालदार और सुभेदार, सभी का काम प्रशंसनीय रहा, श्रीमन्त सरकार!

शिवाजी (हम्माल की ओर देखकर, मुस्कराते हुए) कल्याण का खजाना भी लूट लाये; बहुत माल मिला ?

आवाजी सोनदेव हाँ, श्रीमन्त, सारा खजाना लूट लिया गया और इतना माल मिला जितना अब तक की किसी लूट में भी न मिला था। चाँदी, सोना, जवाहरात, न जाने क्या-क्या मिला। मैं तो समझता हूं, श्रीमन्त, केवल दक्षिण ही नहीं, उत्तर की भी विजय इस संपदा से हो सकेगी।

शिवाजी (हम्मालों के पीछे पालकी को देखकर) और उस मेणा में क्या है ?

आवाजी सोनदेव (मुस्कराते हुए) उस मेणा···उस मेणा में, श्रीमन्त, इस विजय का सबसे बड़ा तोफा है।

शिवाजी (उत्सुकता से आवाजी सोनदेव की ओर देखते हुए) अर्थात् ?

आवाजी सोनदेव श्रीमन्त, कल्याण के सुभेदार अहमद की पुत्र-वधू के सौन्दर्य का वृत्त कौन नहीं जानता ? उसे भी श्रीमन्त की सेवा के लिए बन्दी करके लाया हूँ।

(शिवा जी की सारी प्रसन्नता एकाएक लुप्त हो जाती है। उनकी भृकुटि चढ़ जाती है और नीचे का ओठ ऊपर के दाँतों के नीचे आ जाता है। आवाजी सोनदेव शिवाजी की परिवर्तित मुद्रा देखकर घबड़ा-सा जाता है। मोरोपंत एकटक शिवाजी की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

शिवाजी (भर्राये हुए स्वर में) मेणा को तत्काल इस पड़वी में लाओ।

(आवाजी सोनदेव जल्दी से दालान के बाहर जाता है। शिवाजी एकटक पालकी की ओर देखते हैं; मोरोपंत

**शिवाजी की तरफ। कुछ ही क्षणों में पालकी दालान में आती है। ज्योंही पालकी दालान में रखी जाती है त्योंही शिवाजी जल्दी से पालकी के निकट पहुँचते हैं! मोरोपंत शिवाजी के पीछे-पीछे जाता है।)**

शिवाजी — **(आवाजी सोनदेव से)** खोल दो मेणा, आवाजी।

**(आवाजी सोनदेव पालकी के दरवाज़े खोलता है। दरवाज़े खुलते ही अहमद की पुत्र-वधू उसमें से निकल चुपचाप एक ओर सिकुड़ कर खड़ी हो जाती है। वह परम सुन्दरी युवती है। वेष-भूषा मुगल स्त्रियों के सदृश।)**

शिवाजी — **(अहमद की पुत्र-वधू से)** माँ, शिवा अपने सिपहसालार की इस नामाक़ूल हरकत पर आपसे मुआफी चाहता है। आह! कैसी अजीबो-गरीब ख़ूबसूरती है आपकी। आपको देखकर मेरे दिल में एक. . .सिर्फ़ एक बात उठ रही है—क़ही मेरी माँ आपकी सी ख़ूबसूरत होती तो मैं भी बदसूरत न होकर एक ख़ूबसूरत शख्स होता। माँ, आपकी ख़ूबसूरती को मै एक. . .सिर्फ़ एक काम मे ला सकता हूँ—उसका हिन्दू विधि से पूजन करूँ; उसकी इस्लामी-तरीक़े से इबादत करूँ। आप जरा भी परेशान न हों। माँ, आपको आराम, इज्जत, हिफ़ाज़त, और खबरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायगा; बिना देरी के फ़ौरन। **(आवाजी सोनदेव की ओर घूमकर)** आवाजी, तुमने ऐसा काम किया है, जो कदाचित् क्षमा नही किया जा सकता। शिवा को जानते हुए, तुम्हारा साहस ऐसा घृणित कार्य करने के लिए

कैसे हुआ ? शिवा ने आज पर्य्यन्त किसी मसजिद की दीवाल में बाल बराबर दरार भी न आने दी। शिवा को यदि कहीं कुरान की पुस्तक मिली तो उसने उसे सिर पर चढ़ा, उसके एक पन्ने को भी किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए बिना, मौलवी साहब की सेवा में भेज दिया। हिन्दू होते हुए भी शिवा के लिए इस्लाम-धर्म पूज्य है। इस्लाम के पवित्र स्थान, उसके पवित्र ग्रन्थ, सम्मान की वस्तुएं हैं। शिवा हिन्दू और मुसलमान प्रजा में कोई भेद नही समझता। और, उसकी सेना में मुसलिम सैनिक तक है। वह देश में हिन्दू राज्य नही, सच्चे स्वराज्य की स्थापना चाहता है। आतताइयों से सत्ता का अपहरण कर उदार-चेताओं के हाथों में अधिकार देना चाहता है। फिर पर-स्त्री—अरे ! पर-स्त्री तो हरेक के लिए माता के समान है। जो अधिकार-प्राप्त जन है, जो सरदार है, या राजा, उन्हे... उन्हें तो इस सबध में विवेक, सबसे अधिक विवेक रखना आवश्यक है। **(कुछ रुककर)** आबाजी, क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते थे ? इसलिए तो तुमने यह कृति नही की ? शिवा ये लडाई-झगड़े, ये लूट-पाट क्या व्यक्तिगत सुखों के लिए कर रहा है ? क्या स्वयं चैन उड़ाना उसका उद्देश्य है ? तब...तब तो ये रक्तपात, ये लूट-मार, घृणित, अत्यन्त घृणित कृतियाँ हैं। शिवा में यदि शील नही तो उसके सेनापतियो, सरदारो को शील का स्पर्श तक नही हो सकता। फिर तो हम में और इन्द्रिय-लोलुप लुटेरो तथा डाकुओ में कोई अन्तर

ही नही रह जाता। अरे तब तो हमारे जीवन मे हमारी मृत्यु, हमारी विजय से हमारी पराजय, कही श्रेयस्कर है। **(मोरोपंत से)** आह! पेशवा, यह...यह मेरे...मेरे एक सेनापति ने...मेरे एक सेनापति ने क्या...क्या कर डाला? लज्जा से मेरा सिर आज पृथ्वी में नही, पाताल में घुसा जाता है। इस पाप का न जाने मुझे कैसा...कैसा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा? **(कुछ रुककर)** पेशवा, इस समय तो मैं केवल एक घोषणा करता हूँ—भविष्य में अगर कोई ऐसा कार्य करेगा तो उसका सिर उसी समय धड़ से जुदा कर दिया जायगा।

**(शिवाजी का सिर नीचे झुक जाता है। अहमद की पुत्र-वधू कनखियों से शिवाजी की ओर देखती है। उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं। मोरोपंत शिवाजी की ओर देखता है और आवाजी सोनदेव घबड़ाहट भरी दृष्टि से मोरोपंत की ओर।)**

**[यवनिका]**

# रीढ़ की हड्डी

जगदीशचन्द्र माथुर

## पात्र

| | | |
|---|---|---|
| उमा | : | लड़की |
| प्रेमा | : | लड़की की माँ |
| रामस्वरूप | : | लड़की का पिता |
| शंकर | : | लड़का |
| गोपालप्रसाद | : | लड़के का बाप |
| रतन | : | रामस्वरूप का नौकर |

(मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आ रही है, वह अधेड़ उम्र के मालूम होते है। एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।)

बाबू अबे धीरे-धीरे चल...अब तख्त को उधर मोड़ दे... उधर...बस, बस। (तख्त के रक्खे जाने की आवाज आती है।)

नौकर बिछा दूँ साहब ?

बाबू (जरा तेज आवाज में) और क्या करेगा? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर में पहुँचा था क्या?...बिछा दूँ सा'ब!...और यह पसीना किसलिए बहाया है?

नौकर (तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।

बाबू हँसता क्यो है? अबे हमने भी जवानी में कसरतें की है। कलसो से नहाता था लोटो की तरह। यह तख्त क्या चीज है? उसे सीधा कर...यों ..हा, बस। ..और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए।...चद्दर भी; कल जो धोबी के यहाँ से आई है वही।

(नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच में मेजपोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ करते हैं। कुर्सियों पर भी दो-चार हात लगाते हैं। सहसा घर की मालिकन प्रेमा का आना। गंदुमी रंग, छोटा कद। चेहरे और आवाज से जाहिर होता है कि किसी काम में बहुत व्यस्त है। उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है। खाली हाथ। बाबू साहब रामस्वरूप दोनों की तरफ देखने लगते है...)

**प्रेमा** मै कहती हूँ, तुम्हे इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड़ गई! एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में—

**राम०** धोती?

**प्रेमा** हाँ, अभी तो बदल कर आये हो, और फिर न जाने किसलिए।

**राम०** लेकिन तुमसे धोती मागी किसने?

**प्रेमा** यही तो कह रहा था रतन।

**राम०** क्यों बे रतन, तेरे कानों मे डाट लगी है क्या? मैने कहा था—धोबी के यहाँ से चद्दर आई है, उसे मांग ला...अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊं। उल्लू कही का।

**प्रेमा** अच्छा, जा पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रक्खे है न? उन्ही में से एक चद्दर उठा ला।

**रतन** और दरी?

**प्रेमा** दरी यही तो रक्खी है कोने मे। वह पड़ी तो है।

**राम०** **(दरी उठाते हुए)** और बीबीजी के कमरे मे से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी...जल्दी आ। **(रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते है।)**

**प्रेमा** लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाये पडी है।

**राम०** मुँह फुलाये?...और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ मे आये है। अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना।

**प्रेमा** तो मैं ही क्या करूँ? सारे जतन करके हार गई। तुम्ही ने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर पर चढ़ा रक्खा। मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जजाल आते नहीं। अपना जमाना अच्छा था 'आ ई' पढ़ ली गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली। सच पूछो तो 'स्त्री-सुबोधिनी' में ऐसी-ऐसी बाते लिखी है—ऐसी बाते कि क्या तुम्हारी बी०

ए०, एम० ए० की पढ़ाई होगी। और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे है।

**राम०** ग्रामोफोन बाजा होता है न?

**प्रेमा** क्यों?

**राम०** दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार चलाकर जब चाहे रोक लो। और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

**प्रेमा** हटो भी। तुम्हें ठठोली ही सूझती रहती है। यह तोहोता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते, अब देर ही कितनी रही है उन लोगो के आने में।

**राम०** तो हुआ क्या?

**प्रेमा** तुम्हीं ने तो कहा था कि जरा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है? इसी मारे मैने तो पौडर-वौडर उसके सामने रखा था। पर उसे तो इन चीजों से न जाने किस जन्म की नफरत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेटकर लेट गई। भाई; मै तो बाज आई तुम्हारी इस लड़की से।

**राम०** न जाने कैसा इसका दिमाग है। वरना आजकल की लड़कियों के सहारे पौडर का कारबार चलता है।

**प्रेमा** अरे मैंने तो पहले ही कहा था। इंट्रेंस ही पास करा लेते। लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती। पर तुम तो—

**राम०** **(बात काटकर)** चुप, चुप! . . . **(दरवाजे में झांकते हुए)** तुम्हें कतई अपनी जबान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ढंग से होगा। मगर

तुम तो अभी से सब कुछ उगले देती हो। उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी।

**प्रेमा** अच्छा बाबा, मैं न बोलूंगी। जैसी तुम्हारी मर्जी हो करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

**राम०** अच्छा तो उमा को जैसे भी हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लेकर भेज देना उसे। और नाश्ता तो तैयार है न? **(रतन का आना)** आ गया रतन?...इधर ला, इधर। बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल...पकड तो जरा इधर से। **(चद्दर बिछाते हैं)**

**प्रेमा** नाश्ता तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायेंगे नहीं। कुछ नमकीन चीजें बना दी है। फल रक्खे हैं ही। चाय तैयार है, और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन? मक्खन तो आया ही नही।

**राम०** क्या कहा? मक्खन नहीं आया? तुम्हें भी किस वक्त याद आई है। जानती हो कि मक्खनवाले की दुकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नही। अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे। दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरो के मारे—

**प्रेमा** यहाँ का काम कौन ज्यादा है? कमरा तो सब ठीकठाक है हीं। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में 'ट्रे' में रक्खा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले आयगा...दो आदमी ही तो है?

**राम०** हां, एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना जरा करीने से आये। ये लोग जरा ऐसे ही है। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इसके दकियानूसी खयालों पर।

खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील है, सभा-सोसायटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

प्रेमा और लड़का !

राम० बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो बेटा सवा सेर। बी० एस-सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढता है मेडिकल कालेज में। कहता है शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है, मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी—

रतन (जो अब तक दरवाजे के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबूजी, बाबूजी !

राम० क्या है ?

रतन कोई आते है।

राम० (दरवाजे से बाहर झाँककर, जल्दी मुँह अन्दर करते हुए) अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गये। (नौकर पर नजर पड़ते ही) और तू यही खड़ा है, बेवकूफ ! गया नही मक्खन लाने ? . . .अबे इधर से नही, अन्दर के दरवाजे से जा। (नौकर अन्दर जाता है) . . .और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी।

(प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ जाती है, उसकी धोती जमीन पर रखे हुए बाजे से अटक जाती है।)

प्रेमा उँह, यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कम्बख्त।

राम० तुम जाओ, मै रख देता हूँ . . .जल्दी। (प्रेमा जाती है। बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।)

राम० हैं-है-हैं, आइए, आइए . . . है-है-है।

(बाबू गोपालप्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फितरती महाशय हैं। उनका लड़का

कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से है। आवाज पतली है और खिसियाहट भरी, झुकी कमर इनकी खासियत है।)

**राम०** (अपने दोनों हाथ मलते हुए) हॅं-हॅं, इधर तशरीफ लाइये, इधर- (बाबू गोपालप्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है) यह बेंत ! ...लाइये, मुझे दीजिये। (कोने में रख देते हैं, सब बैठते हैं) हॅं-हॅं ! ...मकान ढूँढने मे कुछ तकलीफ तो नही हुई ?

**गोपाल०** (खखार कर) नही, ताँगेवाला जानता था...और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नही ?

**राम०** हँ-हॅं-हॅं, यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी—

**गोपाल०** अरे नहीं साहब ! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिये कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी !

**राम०** हॅं-हॅं-हॅं ! यह लीजिये, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके, हँ-हॅं, सेवक ही है। हॅं-हॅं ! (थोड़ी देर बाद लड़के की तरफ मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिनों की और छुट्टियाँ हैं ?

**शंकर** जी, कालेज की तो छुट्टियाँ नही हैं, 'वीक एण्ड' में चला आया था।

**राम०** तो आपके कोर्स खत्म होने में तो साल भर रहा होगा !

**शंकर** जी, यही कोई साल, दो साल।

**राम०** साल, दो साल ?

**शंकर** हॅं-हॅं-हॅं ! ...जी, एकाध साल का 'मर्जिन' रखता हूॅं।

**गोपाल०** बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था क्या बताएँ। इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती है। एक हमारा जमाना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौरियाँ

उड़ा जाते थे, मगर फिर भी खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख !

**राम०** कचौरियाँ भी तो उस जमाने में पैसे की दो आती थी।

**गोपाल०** जनाब, यह हाल था कि चार पैसे की ढेर सी बालाई आती थी, और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेले। और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते है स्कूलों में। तब न कोई वॉलीबाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। कभी हाकी या कभी क्रिकट कुछ लोग खेला करते थे, मगर मजाल कि कोई कह जाय लड़का कमजोर है।

**(शंकर और रामस्वरूप खीस निपोरते है)**

**राम०** जी हाँ, जी हाँ! उस जमाने की बात ही दूसरी थी, हॅं-हॅं!

**गोपाल०** **(जोशीली आवाज में)** और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुरसी पर बैठे कि बारह घटे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घण्टे! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अंग्रेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबला नही कर सकते।

**राम०** जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही।

**गोपाल०** माफ़ कीजियेगा बाबू रामस्वरूप! उस जमाने की जब याद आती है, अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है।

**राम०** हॅं-हॅं-हॅं! . . .जी हॉं वह तो रंगीन जमाना था, रंगीन जमाना! हॅं-हॅं-हॅं! **(शंकर भी ही ही करता है)**

**गोपाल०** **(एक साथ अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए)** अच्छा तो साहब, फिर 'बिजिनेस' की बात हो जाय।

**राम०** **(चौंककर)** बिजिनेस? बिजि. . . **(समझकर)** ओह! . . . अच्छा-अच्छा! लेकिन जरा नाश्ता तो कर लीजिये। **(उठते हैं)**

**गोपाल०** यह आप क्या तक़ल्लुफ़ करते है?

**राम०** हँ-हँ-हँ! तक़ल्लुफ किस बात का! हँ-हँ! यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप तशरीफ़ लाये। वरना मैं किस क़ाबिल हूँ। हँ-हँ! माफ़ कीजिएगा जरा, अभी हाजिर हुआ। **(अन्दर जाते हैं)**

**गोपाल०** **(थोड़ी देर बाद दबी आवाज में)** आदमी तो भला है। मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नही मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है?

**शंकर** जी... **(कुछ खखार कर इधर-उधर देखता है)**

**गोपाल०** क्यों, क्या हुआ?

**शंकर** कुछ नही।

**गोपाल०** झुककर क्यों बैठे हो? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो। तुम्हारे दोस्त ठीक कहते है कि शंकर की 'बैकबोन'..

**(इतने में बाबू रामस्वरूप आते है, हाथ में चाय की 'ट्रे' लिए हुए, मेज पर रख देते हैं)**

**गोपाल०** आखिर आप माने नहीं!

**राम०** **(चाय प्याले में डालते हुए)** हँ-हँ-हँ! आपको विलायती चाय पसंद है या हिन्दुस्तानी?

**गोपाल०** नही-नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए और जरा चीनी भी ज्यादा डालिएगा। मुझे तो भई यह नया फैशन पसंद नहीं। एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाय तो जायका क्या रहेगा?

**राम०** हँ-हँ कहते तो आप सही है। **(प्याला पकड़ाते हैं)**

**शंकर** **(खखारकर)** सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेने वालों पर टैक्स लगाएगी।

**गोपाल०** **(चाय पीते हुए)** हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले; पर अगर

आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

रामः (शंकर को प्याला पकड़वाते हुए) वह क्या ?

गोपाल० खूबसूरती पर टैक्स (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं।) मजाक नहीं साहब, वह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले भी चूँ न करेंगे। बस शर्त यह है कि हरएक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैण्डर्ड' के माफिक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

राम० (जोर से हँसते हुए) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आज कल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के जमाने में तो यह कभी उठना भी न था। (तश्तरी गोपालप्रसाद की तरफ बढ़ाते हुए) लीजिए।

गोपाल० (समोसा उठाते हैं) कभी नही साहब, कभी नही।

राम० (शंकर की तरफ मुखातिब होकर) आपका क्या ख्याल है शंकर बाबू ?

शंकर किस मामले में ?

राम० यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपाल० (बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आप से पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाये, चाहे वैसे ही, बात यह है कि हम-आप मान भी जायँ मगर घर की औरतें तो राजी नही होती। आपकी लड़की तो ठीक है ?

राम० जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपाल० देखना क्या, जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिये।

**राम०** हॅं-हॅं यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है, हॅं-हॅं !

**गोपाल०** और जायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा।

**राम०** जी जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुरजी के चरणों में रख दिया। बस, खुदबखुद मिला हुआ समझिये।

**गोपाल०** यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक (थोड़ी देर रुक कर) लेकिन हाँ यह जो मेरे कानों मे भनक पड़ी है, यह तो ग़लत है न।

**राम०** (चौंक कर) क्या ?

**गोपाल०** यही पढ़ाई-लिखाई के बारे में ! . . .जी हॉ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढ़ी-लिखी लडकी नही चाहिए। मेम साहब तो रखनी नही, कौन भुगतेगा उनके नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए . . .क्यों शकर ?

**शंकर** जी हॉ, कोई नौकरी तो करानी नही।

**राम०** नौकरी का तो कोई सवाल ही नही उठता।

**गोपाल०** और क्या साहब ! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते है कि जब आपने अपने लड़कों को बी० ए०, एम० ए० तक पढाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिये। भला पूछिये इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियो की पढ़ाई एक बात है, अरे मर्दो का काम तो है ही पढना और काबिल होना। (अगर औरतें भी वही करने लगी, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगी और 'पालिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगी तब तो हो चुकी गृहस्थी)। (जनाब, मोर के पंख होते है, मोरनी के नहीं; शेर के बाल होते है, शेरनी के नहीं।)

**राम०** जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नही—हॅं-हॅं-हॅं !

**(शंकर भी हंसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते हैं)**

**गोपाल०** हाँ हाँ, वह भी सही है। (कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें

दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिये है और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीजों में से एक है।

**राम०** (शंकर से) चाय और लीजिए।

**शंकर** धन्यवाद। पी चुका।

**राम०** (गोपालप्रसाद से) आप!

**गोपाल०** बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिये।

**राम०** आपने तो कुछ खाया ही नहीं, चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बतायें, वह मक्खन—

**गोपाल०** नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं। और फिर मैं टोस्ट-वोस्ट खाता भी नहीं।

**राम०** हॅं-हॅं, **(मेज को अन्दर सरका देते हैं, फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ़ मुँह करके ज़रा जोर से)** अरे, जरा पान भिजवा देना... सिगरेट मंगवाऊँ?

**गोपाल०** जी नहीं।

**(पान की तश्तरी हाथों में लिए उमा आती है। सादगी कपड़े, गर्दन झुकी हुई, बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ा कर के और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं)**

**राम०** हॅं-हॅं!...यही, हॅं-हॅं, आपकी लड़की है। लाओ बेटा, पान मुझे दो।

**(उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने के रिमवाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौंक उठते हैं)**

**गोपाल०** शंकर **(एक साथ)** चश्मा!!

**राम०** **(जरा सकपका कर)** जी, वह तो...यह... पहले महीने में इसकी आँखें दुखने आ गई थी, सो कुछ दिनों के लिये चश्मा लगाना पड़ रहा है।

**गोपाल** पढ़ाई-वढाई की वजह से तो नहीं है कुछ ?

**राम०** नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज किया न।

**गोपाल०** हूँ, (संतुष्ट होकर, कुछ कोमल स्वर में) बैठो बेटी।

**राम०** वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे-वाजे के पास **(उमा बैठती है)**

**गोपाल०** चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है... हाँ कुछ, गाना-बजाना सीखा है ?

**राम०** जी हाँ, सितार भी और बाजे भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

**(उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीराँ का मशहूर गीत "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई" गाना शुरू कर देती है। स्वर से जाहिर होता है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।)**

**राम०** क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो, उमा।

**गोपाल०** नहीं-नहीं साहब, काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

**(उमा सितार रखकर अन्दर जाने को बढ़ती है)**

**गोपाल०** अभी ठहरो , बेटी !

**राम०** थोड़ी और बैठी रहो, उमा ! **(उमा बैठती है)**

**गोपाल०** **(उमा से)** तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग भी सीखी है ? **(उमा चुप)**

**राम०** हाँ, वह तो आपको बताना भूल ही गया। यह जो तसवीर टंगी हुई है। कुत्तेवाली, इसी ने खीची है, और वह उस दीवार पर भी।

**गोपाल०** हूँ, यह तो बहुत अच्छा है, और सिलाई वगैरह ?

**राम०** सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि कमीजें भी। हॅ-हॅ-हँ।

**गोपाल०** ठीक ! . . . लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं ?

**(उमा चुप ! रामस्वरूप इशारे के लिये खाँसते हैं, लेकिन उमा चुप है, उसी तरह गर्दन झुकाये। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।)**

**राम०** जवाब दो, उमा। **(गोपाल से)** हँ-हँ, जरा शरमाती है। इनाम तो इसने—

**गोपाल०** **(जरा रूखी आवाज में)** जरा भी तो मुँह खोलना चाहिए।

**राम०** उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं। जवाब दो न।

**उमा** **(हल्की लेकिन मजबूत आवाज में)** क्या जवाब दूँ बाबूजी ! (जब कुर्सी-मेज बिकती है तब दुकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है। पसंद आ गई तो अच्छा है, वरना—)

**राम०** **(चौंककर खड़ा होता है)** उमा, उमा !

**उमा** अब मुझे कह लेने दीजिये बाबूजी ! . . (ये जो महाशय मेरे खरीददार बनकर आये हैं, इनसे जरा पूछिये कि क्या लड़कियो के दिल नहीं होता ? क्या उनके चोट नहीं लगती ? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते हैं ?)

**गोपाल०** **(ताव में आकर)** बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिये मुझे यहाँ बुलाया था ?

**उमा** **(तेज आवाज में)** (जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नापतौल कर रहे हैं ? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिये कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाये गये थे !)

**शंकर** बाबूजी, चलिये।

**गोपाल०** लड़कियों के होस्टल में! . . .क्या तुम कालेज में पढ़ी हो?
**(रामस्वरूप चुप)**

**उमा** जीहाँ, मै कालेज में पढी हूँ। मैने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नही किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झांककर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत—अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

**राम०** उमा, उमा!!

**गोपाल०** **(खड़े होकर गुस्से में)** बस हो चुका, बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी० ए० पास है और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है, लाइए मेरी छड़ी कहाँ है, मै चलता हूँ। **(छड़ी ढूंढ़ कर उठाते हैं)** बी० ए० पास! उपफोह! गजब हो जाता! झूठ का भी कुछ ठिकाना। आओ बेटे, चलें। **(दरवाजे की ओर बढ़ते हैं)**

**उमा** जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं—यानी बैकबोन, बैकबोन—

**(बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम्म से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।)**

**प्रेमा** उमा, उमा! . . .रो रही है? **(यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है)**

**रतन** बाबूजी, मक्खन!

**(सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।)**

# समस्या का अन्त

उदयशंकर भट्ट

## पात्र

माणविका : वामरथगण की कन्या
श्रुतबुद्धि : मद्रकगण का सेनानायक
शबर : माणविका का पिता
दर्मक : माणविका का भाई

मधुमती, आनन्दक, दीर्घक, सागरिका आदि।

## प्रथम दृश्य

[रात्रि का समय। आकाश में कभी-कभी चाँद मुसकरा उठता है, शेष समय बादल के टुकड़े उठ-उठकर चन्द्रमा को घेर लेते हैं, मानो प्रसन्नता के अन्दर कभी-कभी विषाद की रेखा खिंच जाती हो। एक नवयवती, जिसमें सत्रह-अठारह वर्षों ने अपनी संचित शक्ति भर डाली है। उठान के साथ सौन्दर्य, सौन्दर्य के साथ बल, बल के साथ गठन, गठन के साथ दृढ़ता, आत्म-विश्वास, गर्व और अभिलाषा के कुछ स्फुलिंग। गौर वर्ण, जटाजूट वेणी, जिससे ललाट और भी विशाल दिखाई देता है। वेणी-जटा में चारों ओर मालती के पुष्प हैं। आयताक्ष, तीखी नाक, और स्तनांशुक तथा कौषेय शाटिका। सुदृढ़ शरीर, साथ में सिंह-शावक, जो लौह-शृंखला से बँधा है। स्थान नदी का तट। सिंह-शावक पानी पी रहा है। युवती, जिसका नाम माणविका है, नदी की धार की ओर ध्यान से देख रही है। कभी 'अरे पी चुका' कहकर सिंह-शावक को झटका देती है। फिर ध्यान से नदी की धार की ओर देखने लगती है। ऐसा दीख पड़ता है, मानो, दूर से कोई व्यक्ति नदी की धार को चीरता हुआ चला आ रहा है। माणविका देखकर कहती है— ]

कौन आ रहा है? इस भयंकर तूफान में नदी को चीरता हुआ यह कौन आ रहा है? अरे, क्या वही है?

[व्यक्ति पास आ जाता है। सिंह एक बार फिर गरजता है। व्यक्ति की फूली हुई साँसों की आवाज बढ़ती है।]

**माणविक** (पास से) तुम, तुम आ गये? इतनी बढ़ी हुई नदी को अँधेरी रात में पार करके आज तुम फिर आ गये श्रुतबुद्धि?

**श्रुतबुद्धि** हाँ, माणविका! मैं आ गया। यह तो नदी है, तुम्हारे लिए मै समुद्र पार कर सकता हूँ। आकाश के तारे तोडकर ला सकता हूँ।

**माण०** श्रुतबुद्धि! जानते हो, तुम्हारे इस साहसपूर्ण कार्य का क्या अर्थ होगा?

**श्रुत०** मेरा नाश?

**माण०** तुम्हारा ही नहीं, मेरा भी। तुम्हारे यहाँ आने के कारण सहस्रों वामरथों, मद्रकों का नाश हो जायगा। मेरे गण के लोग यह नहीं चाहते कि एक भी वामरथ मद्रकों से मिले।

**श्रुत०** **(नदी पार करने की थकावट से साँस अभी तक फूल रही है)** मै जानता हूँ माणविका, मैं तुमसे मिलने आकर आग से खेल रहा हूँ। मृत्यु को हथेली पर रखकर ही मै यहाँ आता हूँ, माणविका!

**माण०** किन्तु तुम्हारे घाव तो अभी भरे नहीं है। नदी में प्रतिदिन इस प्रकार संतरण करने से क्या वे फट न जायेंगे? उनमें विपाक न पड़ जायगा?

**श्रुत०** नही, अब वे कुछ-कुछ ठीक हैं। उनसे भी बढ़कर मेरे हृदय में एक घाव हो गया है, माणविका।

**माण०** हैं? हृदय में घाव? किसी वैद्य को दिखाओ। **(सिंह गरजता है)** अरे, तुझे क्या हो गया? तू किधर भाग रहा है? ठहर जा, श्रुतबुद्धि! तुम्हारी भेंट यह सिंह भी मेरे क्रीडनक से कम नही है। दो-एक दिन तो इसने मुझे व्यर्थ ही दौड़ाया। किन्तु अब यह मेरा आज्ञाकारी हो गया है। देखो, तनिक इसके सिर पर हाथ फेरो, कितना सुन्दर है! यह तुम्हारे

हृदय में घाव कैसे हो गया, भला? किसी और सिंह से युद्ध किया था क्या?

श्रुत० नहीं, एक सिंहनी से युद्ध करना पड़ा।

माण० (भोलेपन से) सिंहनी से? सिंह की अपेक्षा सिंहनी से युद्ध करना कठिन है। किस स्थान पर तुमने युद्ध किया था? यहाँ वामरथों के वन में अथवा मद्रक-वन में।

श्रुत० वामरथ-वन में?

माण० वामरथ-वन में? कहाँ?

श्रुत० लम्बी कथा है माणविका, तुम न समझ सकोगी।

माण० यदि तुम समझाओगे तो मैं क्यों न समझ सकूँगी। यह हृदय में घाव कैसे हो गया है? तुम्हें मालूम है मेरे परिवार को सन्देह हो गया है। पहले मैं क्षेत्र-रक्षा के लिए रात्रि-भर नहीं रहती थी, अब मैंने तुमसे मिलने के लिए रात्रि-भर क्षेत्र-रक्षा का भार लिया है। इसी से मेरी माता को सन्देह हो गया है श्रुतबुद्धि!

श्रुत० फिर?

माण० हम लोग दो-एक दिन में गान्धार जाने वाले हैं। मेरी माता गान्धार देश की है न। गान्धार में मेरी माता को दो बड़े अन्न-क्षेत्र मिले हैं, इसीलिए।

श्रुत० मुझे वामरथों से कोई डर नहीं है माणविका! (जीवन दो बार नहीं मिलता। प्रेम दो व्यक्तियों से नहीं किया जाता।) क्या तुम मुझे छोड़कर चली जाओगी माणविका?

माण० जाना ही होगा श्रुतबुद्धि! तुमने हृदय के घाव के सम्बन्ध में नहीं बताया।

श्रुत० व्यर्थ है।

माण० व्यर्थ क्यों है, क्या तुम माणविका को...

श्रुत० (मुझे बड़ा धोखा हुआ। विश्वास के पखों पर उड़कर जो मैंने

पाया था, आज वह नदी की लहरों में बहा जा रहा है। जीवन इतना क्षणिक है, विश्वास इतना पंगु है, प्रेम इतना कमजोर है, हृदय इतना दुर्बल है, यह मैंने आज ही जाना।)

माण० तुम इतने दुखी क्यों होते हो ? मै गान्धार से फिर लौट आऊँगी।

श्रुत० वर्षों प्रतीक्षा करनेवाला हृदय क्षण-भर भी विश्वास नही करता माणविका! तुम क्या इसी तरह लौट सकोगी ? उतना ही सबल प्रेम लेकर, विश्वास नही होता। अच्छा चलूँ। लहरें मेरी प्रतीक्षा कर रही है। बिजलियाँ कड़ककर मेरी कमजोरी को देख रही है।

माण० मैं नहीं समझती, तुम क्या कह रहे हो।

श्रुत० सिहों से युद्ध करनेवाली युवती हृदय से युद्ध नही कर सकती।

माण० तुम जानते हो ? इस आधी रात को न जाने कौन मुझे इस नदी-तट पर खीचकर ले आता है। न जाने क्यों तुम्हारी मूर्ति मेरी आँखों में झूलती रहती है ?

श्रुत० फिर भी तुम मेरे हृदय के घाव की गहराई को नही समझ पातीं माणविका!

माण० **(लम्बी आह भरकर)** मैं समझती हूँ श्रुतबुद्धि! अब समझी, तुम न जाने कौन-सी भाषा में बात करते हो ? तुम बात करने में बडे चतुर हो। क्या सभी मद्रक इसी प्रकार बहुत बातें करना जानते है ?

श्रुत० **(चुप रहकर कुछ सोचता हुआ)** मैं नही चाहता कि तुम गान्धार जाओ।

माण० मैं विवश हूँ। माता-पिता जा रहे है। मुझे जाना ही होगा श्रुतबुद्धि!

**(इसी समय माँ की आवाज आती है : 'माणविका, माणविका, ओ माणविका! अरी कहाँ है तू ?')**

माण० यहाँ नदी-तट पर सिंह-शावक को जल पिलाने आई थी। आ रही हूँ। (सिंह गरजता है) (धीरे से) तुम जाओ श्रुतबुद्धि! माता आ रही है, जाओ।

श्रुत० मैं नही जा सकता माणविका! इतनी दूर आकर लौट सकना असभव है। बोलो, तुम गान्धार नही जाओगी?

माण० मै, मैं कुछ नही कह सकती श्रुतबुद्धि! तुम जाओ।

**(नेपथ्य से 'माणविका! माणविका!' आवाज पास आ जाती है।)**

माँ मै आ रही हूँ, देख बादल घिरे आ रहे है। बिजली कड़क रही है। और तू नदी के किनारे अकेली है।

माण० अभी आ रही हूँ माँ, आ रही हूँ। यह सिंह नही आना चाहता। **(गरजता है)** देख, बिजली की कड़क, बादलों की गरज से यह कितना प्रसन्न होता है। **(सिंह फिर गरजता है)** तुम जाओ श्रुतबुद्धि, जाओ। माँ आ रही है।

श्रुत० तुम वचन दो।

माण० हम लोग कल रात्रि को यही मिलेगे, जाओ।

माँ देख, अन्न को पशु चरे जा रहे है। और तू नदी के तट पर बिजली की कड़क, मेघों की गरज, नदी की बाढ़ देख रही है। कौन है तेरे पास?

**(श्रुतबुद्धि नदी की धार में कूद पड़ता है। माँ का प्रवेश)**

माण० कोई भी तो नहीं माँ! कोई भी नही।

माँ तू बोल रही थी न?

माण० कोई भी न था। एक नक्र को देखकर मदनक गरज रहा था।

माँ आज मद्रकों ने हमारे दो वामरथों को मार डाला, तूने सुना?

माण० क्यो?

माँ यह तो मुझे नही मालूम। कोई बात होगी। कोई कहता है

कि वामरथ मद्रको के प्रदेश में घुस रहे थे। कोई कहता है, मद्रक उन्हें पकड़कर ले गये।

माण० बड़े दुष्ट है मद्रक। नदी के उस पार ही तो मद्रकों का देश है।

माँ आओ, चलें। मद्रकों के कारण यह तट भी असुरक्षित होता जा रहा है। आओ, चलें। तुझे अकेली नदी-तट पर डर नहीं लगता री ?

माण० डर किस बात का माँ ! मदनक जो मेरे साथ है।

माँ मद्रकों का। हम लोग शीघ्र ही गान्धार चले जायेंगे।

माण० क्या मद्रकों के भय के कारण ही ?

माँ यह प्रतिदिन का युद्ध मुझे अच्छा नहीं लगता। चल, अन्न पड़ा है, पशु न खा जायँ। तू किससे बात कर रही थी ?

माण० (मदनक से)। चलो (सिंह गरजता है)।

## द्वितीय दृश्य

**(अन्न-क्षेत्र से हरे-भरे वन में बलिष्ठ शरीर नवयुवक श्रुतबुद्धि घूम रहा है। घनाच्छादित आकाश में कभी चन्द्रोदय हो जाता है। कभी श्रुतबुद्धि घूमता दिखाई देता है। घुटनों तक धोती, शेष शरीर मृग-चर्म के कंचुक से ढका हुआ। कमर में कुन्त। सिर के बाल पीछे की तरफ बिखरे हुए। अन्धकार में श्रुतबुद्धि घूम रहा है। क्षेत्रों में मंच दिखाई देते हैं। एक मंच के पास जाकर 'माणविका, माणविका' धीरे-धीरे आवाज लगाता है।)**

श्रुत० **(धीरे से)** यह मंच पर कौन बैठा है, निश्चय ही यह माणविका। माणविका ! प्रिय माणविका !

एक व्यक्ति कौन है, कौन है ? **(आगे बढ़कर)** तुम कौन हो ?

श्रुत० **(चुप)**।

शबर — दर्भक, देखो, मुझे स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहा है। देखो तो तनिक।

दर्भक — देखता हूँ दादा, (आगे बढ़कर श्रुतबुद्धि को पकड़कर) बोलो तुम कौन हो?

श्रुत० — छोड़ो, मुझे जाने दो। (छुड़ाता है, दर्भक पकड़ लेता है।)

दर्भक — अब तुम नहीं जा सकते, तस्कर!

शबर — कौन है दर्भक? क्या यह अन्न चुराने आया था?

श्रुत० — माणविका को मैंने मदनक भेंट में दिया था, उसे लेने को आया हूँ।

शबर — क्या कहा, माणविका को इसने मदनक भेंट में दिया था?

दर्भक — यही कहता है। (सामने जाकर) माणविका से तुम्हारा सम्बन्ध?

श्रुत० — सम्बन्ध...क्या माणविका नहीं है?

दर्भक — तुमने मदनक उसे क्यों दिया था? नहीं, तुम तस्कर हो।

शबर — पकड़ लो दर्भक, पकड़ लो। यह कोई तस्कर है।

दर्भक — मदनक तुमने भेंट में दिया था। तुम हो कौन?

श्रुत० — मैं मद्रक हूँ, श्रुतबुद्धि मेरा नाम है।

दोनों — मद्रक, दुष्ट मद्रक, अब तुम बचकर नहीं जा सकते।

(दोनों में युद्ध होता है, शबर और दर्भक दोनों मिलकर श्रुतबुद्धि को मारते हैं, श्रुतबुद्धि 'आह' करके गिर जाता है।)

शबर — मर गया?

दर्भक — हाँ, मर गया।

शबर — साँस तो नहीं है?

दर्भक — नहीं, अब यह उठ नहीं सकता। मद्रक गण के किसी व्यक्ति को देखकर उसे सुरक्षित जाने देना वानरथों का धर्म नहीं है। चलो चलें।

शबर हाँ, ठीक है। चलो।

(माणविका का प्रवेश)

माण० (उसी अंधकार में) अभी तक श्रुतबुद्धि नही आया। क्या वह अब न आयगा? है, यह क्या, यह कौन है? (पास जाकर) अरे श्रुतबुद्धि! यह तुम्हारी दशा किसने की? श्रुतबुद्धि! अभी सांस तो चल रही है। ठहरो, मै मुँह में जल डालती हूँ। श्रुतबुद्धि! नेत्र खोलो, देखो, मै माणविका हूँ।

श्रुत० (धीरे से) माणविका!

माण० तुम्हारी यह दशा किसने की श्रुतबुद्धि!

श्रुत० (चुप रहता है।)

माण० बोलो प्रिय, तुम्हें क्या हुआ?

श्रुत० माणविका, तुम्हारे पिता शबर और भाई दर्भक ने मिलकर मुझे मार ही डाला था।

माण० तुम क्षेत्र में गये थे?

श्रुत० हाँ, तुम्हें खोजता अन्न-क्षेत्र में गया था। अब मै ठीक हूँ।

माण० प्रिय! कल अन्न घर चला जायगा। इसके पश्चात् हमारा क्षेत्र का कार्य समाप्त हो जायगा। परसों हम लोग गांधार जा रहे है।

श्रुत० फिर तुमने मुझे क्यो जीवित किया? माणविका, मुझे यहीं नदी-तट पर मर जाने देती।

माण० प्रिय!

श्रुत० माणविका!

माण० मैं चुपचाप माता को सोती छोड़कर अन्तिम बार तुमसे मिलने आई हूँ। कल कुछ मद्रकों ने दो वामरथों को मार डाला। मै मद्रको से घृणा करती हूँ। तुमसे भी मिलना नही चाहती

थी, किन्तु समय आते ही न जाने क्यो मुझसे रहा न गया। मै सोई न रह सकी। दौड़ी हुई तुमसे मिलने चली आई।

श्रुत० मै तुम्हारे बिना जीवित न रह सकूँगा। तुम्हे मेरे साथ चलना होगा।

माण० शत्रु मद्रकों के घर मैं नही जा सकती।

श्रुत० हमारा प्रेम मद्रक-वामरथो से ऊपर है, माणविका !(मैं वचन देता हूँ कि जीवन रहते तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम प्राण हो, मैं शरीर; तुम हृदय हो, मै स्पन्दन; तुम वाणी हो, मैं जिह्वा, माणविका !

माण० प्रिय, हम-तुम एक होकर रह सकेंगे ?

श्रुत० अवश्य, हमें संसार की कोई शक्ति पृथक् नहीं कर सकती।

माण० नारी एक बार हृदय देती है।

श्रुत० मद्रक एक ही नारी को प्यार करते है।

## तृतीय दृश्य

**सुरा-पान करते हुए मद्रकगण नाच रहे हैं।**

छलक-छलक चले।
सुरा भरे मधुर-मधुर चषक ढलक चले
रग-रंग रूप-रूप में ढले—छलक-छलक चले।
सुरा भरे मधुर-मधुर चषक ढलक चले
प्रेम नेत्र-द्वार से ललक-ललक चले।
छलक-छलक चले।
गीत गा रही निशा सितार-तार पर
होश भी उलझ रहे नैन-द्वार पर
मदिर-मदिर सुगध पी प्राण थक चले।
छलक-छलक चले।

महान गान आज यह समीर-ताल पर
घूमते सुरा-चषक अमन्द चाल पर
प्राण-प्राण गान कर ललक-ललक चले।
छलक-छलक चले।
सुरा भरे मधुर-मधुर चषक ढलक चले।

**सब** एक बार और मिलकर पियो। श्रुतवुद्धि माणविका के दीर्घ जीवन के लिए पियो।

**प्रथमक** हमारे जीवन पर संसार का जीवन निर्भर है, अतः अपने लिए पियो। अपने नेत्र बन्द कर लेने पर ससार में अन्धकार छा जाता है और यह सुरा स्वर्ग-गमन के लिए सोपान है। अतः पियो। एक बार पियो, अनेक बार पियो। हा हा हा...

(पीता है)

**मधुमती** प्रथमक, पीकर तुम भूल जाते हो कि कोई और भी है। हम मद्रकों में अपना तो कोई है ही नही। इसलिए मै कहती हूँ सबके लिए पियो, सबके सुख के लिए पियो। माणविका के लिये पियो, श्रुतबुद्धि के लिए पियो। लो माणविका!

(चषक देती है।)

**आनंदक** प्रमाद है, जीवन प्रमाद है। मै कहता हूँ कि इतना पियो कि जिससे अपने को, पराये को भूल जाओ। यही ब्रह्मानंद है। (युद्ध में जिस प्रकार जीवन का मोह नही होता, वैराग्य में जिस प्रकार मरण से घृणा, भय नही होते इसी प्रकार मरण-जीवन के बन्धन की उपेक्षा करके पियो।) लो, तुम पियो मधुमती, तुम्हारा नाम मधुमयी है। प्रिये, स्वय सुरामयी हो तुम।

**श्रुत०** माणविका मद्रको की विजय-श्री है। प्रिये, सब मद्रक तुम्हारा स्वागत करते है, लो एक मेरे हाथ से प्रिये!

**माण०** प्रिय, प्रेम भेद नही जानता। उसकी दृष्टि में न मद्रक हैं, न वामरथ। वह सबके लिए पेय है।

**(मद की विह्वलता से रूप की आँखें विभोर हो उठती हैं। कुछ स्वयं उठकर नाचने लगते हैं। हा-हा-हू-हू से स्थल भर जाता है।)**

**सागरिका** माणविका, सुरा जीवन के वसंत का अग्रदूत है। आह, तुम इस समय कितनी सुन्दर लग रही हो। तुम्हारी आँखों के डोरों ने मानो यौवन महाराज के आने के लिए उल्लास का पथ बना दिया हो। **(हँसती है।)**

**माण०** ठीक कहती हो सागरिका, तुम्हारे लाली-भरे कपोल उनके ऊपर छत्र बनकर चल रहे हैं।

**सब** ठीक, सुन्दर **(हा-हा हँसते है।)** !

**सब** हा-हा एक बार नही अनेक बार। मद्रक गण की जय।

**गूँज उठे आकाश हमारा गूँज उठे।**

**गूँज उठे मधुमास दुलारा गूँज उठे।** (हँसते हैं)

**(सहसा प्रवेश करके)**

**दीर्घक** बस करो, बस करो। तुमने सुना, वामरथ मद्रकों पर आक्रमण करके माणविका के अपहरण का बदला लेना चाहते है। उत्सव बन्द करके युद्ध की तैयारी करो।

**सब** माणविका मद्रकवर्ग की हो गई। हम उसकी रक्षा के लिए प्राण दे देंगे, चलो।

**माण०** प्रियतम श्रुतबुद्धि !

**श्रुत०** प्रिये !

**माण०** तुमने सुना ?

**श्रुत०** मद्रक युद्ध से कभी नही डरते, माणविका ! हम लोग प्राण रहते तुम्हारी रक्षा करेंगे।

**माण०** हूँ।

**श्रुत०** चलो, प्रातःकाल ऊषा की लालिमा के साथ शाकल नदी को वामरथो के रक्त से रँग देने के लिए चलो।

**सब** हाँ, चलो।

**माण०** श्रुतबुद्धि वामरथ मेरे बन्धु है, यह नही होगा।

**श्रुत०** फिर क्या होगा ? युद्ध का आह्वान होने पर हम पीछे नहीं हट सकते।

**माण०** क्या युद्ध आवश्यक है श्रुतबुद्धि ?

**श्रुत०** प्रिये, हमारा जीवन गण के लिए है। मद्रक गण के सेनानायक होने के नाते मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं युद्ध के लिए अपने गण को तैयार करूँ।

**माण०** **(दीर्घ साँस लेकर चुप रह जाती है।)**

**श्रुत०** आज्ञा दो प्रिये, बाहर कोलाहल बढ़ रहा है। संपूर्ण वर्ग मेरी प्रतीक्षा में है।

**माण०** मैं कुछ नहीं जानती।

**श्रुत०** तुम्हारा मुख-चन्द्र फिर देखने का विश्वास लेकर जा रहा हूँ प्रिये !

**(चला जाता है)**

**सागरिका** माणविका ! तुम उदास हो गई। हम मद्रक स्त्रियाँ, ओह यह युद्ध कितना भयानक है ?

**माण०** सखी ! मै भी युद्ध के लिए जाऊँगी।

**सागरिका** युद्ध के लिए जाना अनुचित नही, किन्तु क्या तुम अपने भाई-बन्धु वामरथों से युद्ध कर सकोगी ?

**माण०** यही सोचती हूँ; किंतु मुझे जाना ही होगा। मै ठहर नहीं सकती।

**सागरिका** कहाँ विलास और कहाँ मृत्यु ! कितना अन्तर है इनमें ?

**माण०** तुम सच कहती हो सखी ! प्रेम बलिदान चाहता है।

सागरिका ऐं ! तो क्या तुम अपना बलिदान दोगी ? क्या यह युद्ध किसी प्रकार रुक नहीं सकता ?

माण० तुमने नींद में सोते हुए प्रिय के अधर-स्पर्श के आनन्द का अनुभव किया है सागरिका ?

सागरिका इस युद्ध के समय तुम्हें यह क्या सूझा है। हाँ, ठीक है। बिचारी के विवाह को दिन ही कितने हुए है। सखी ! मेरा विश्वास है, श्रुतबुद्धि विजयी होकर लौटेंगे।

माण० तुमने सिंह की दाढ़ों से छीनकर मृग का मांस खाया है सागरिका ?

सागरिका नहीं। पर इस समय इन बातों से मतलब ?

माण० तुमने बरसाती नदी की वेगमयी धार में तैरते हुए नृत्य किया है सागरिका ?

सागरिका नहीं।

माण० मुझे एक चषक सुरा दो।

सागरिका लो, पियो। प्रियतम के पुनरागमन के लिए कादम्ब-पान करो सखी !

(गट-गट पीती है)

माण० एक और।

सागरिका लो :

माण० एक चषक और दो।

सागरिका बस, अब मत पियो। पहले भी तुमने अधिक पिया है। यह इक्षुसुरा तुम्हारे द्राक्षा-रस से अधिक उग्र होती है, माणविका !

माण० और दो, मुझे पीने से मत रोको। मै आज सारा कादम्ब पी जाना चाहती हूँ। रोको मत सखी, और दो।

सागरिका नहीं, और मत पियो। अरे, तुम कैसी हो रही हो ? जैसे

तुमने अपने को भुला दिया है। है, हैं, अरे, गिरी जा रही हो। ठहरो, तुम्हें पर्यंक पर लिटा देती हूँ, चलो।

**माण०** मेरे प्राण आसव बनकर विश्व को विभोर कर दें।

**सागरिका** हमारा गण विजयी होकर लौटे।

## चतुर्थ दृश्य

**('वामरथों की जय', 'मद्रकों की जय' के नारे लगते हैं)**

**वामरथों में से** यदि अपना कल्याण चाहते हो तो माणविका को लौटा दो।

**मद्रकों में से** यह नही हो सकता। माणविका परिणीता वधू है, वह लौट नही सकती।

**वामरथों में से** तो मरने के लिए तैयार हो जाओ। हम एक-एक मद्रक का नाश कर देंगे।

**मद्रकों में से** बहुत बातें मत करो। युद्ध में ही बल की परीक्षा होती है। आओ, युद्ध करो।

**वामरथ** वामरथ गण की जय।

**मद्रक** मद्रक गण की जय।

**वामरथ** मरने के लिए तैयार हो जाओ।

**मद्रक** तुम भी। आओ युद्ध करो।

**(परशु, भाले, कृपाण खनखना उठते हैं इसी समय)**

**माण०** ठहरो, ठहरो, युद्ध बन्द करो।

**वामरथ** कौन, माणविका? वामरथ की जय!

**मद्रक** माणविका, तुम जाओ। मद्रक गण की जय!

**माण०** मैं वामरथों की पुत्री और मद्रकों की वधू हूँ। मै चाहती हूँ युद्ध बन्द हो।

**वामरथ** मद्रकों ने हमारा अपमान किया है। माणविका को उठाकर ले चलो।

मद्रक — वामरथों ने हमारे ऊपर आक्रमण किया है, इसलिए हम उन्हें दण्ड देंगे।

माण० — (चिल्लाकर) क्या युद्ध किसी भी तरह बन्द नही हो सकता ?

सब — युद्ध होगा। युद्ध बन्द नही होगा।

माण० — (सिर काटती है) यह मेरा सिर आप दोनो की भेट है।

वामरथ — (चिल्लाकर) माणविका, यह तुमने क्या किया ?

श्रुतबुद्धि — अरे, अरे, माणविका ! यह क्या कर दिया प्रिये !

(सब युद्ध बन्द करके माणविका को घेरकर खड़े हो जाते हैं।)

वामरथ — अब युद्ध व्यर्थ है।

मद्रक — अब युद्ध की आवश्यकता नही है। किन्तु माणविका का बलिदान ! वह मद्रकों की वधू थी।

वामरथ — वह वामरथों की कन्या थी।

सब — वह दोनो की थी।

श्रुतबुद्धि — आज से मद्रकों का वामरथो से कोई वैर नही है।

सब — माणविका का बलिदान चिरजीवी हो। माणविका की जय ! हमारी कटुता, शत्रुता का अन्त हो गया। आज से हम एक है। वामरथ-मद्रकगण की जय !

(उपसंहार नेपथ्य से)

इसके पश्चात् कई मास तक एक व्यक्ति की आवाज सुनाई देती रही। 'माणविका ! प्रिये माणविका !' किन्तु कभी कोई उत्तर नही मिला। कभी-कभी प्रतिध्वनि टकराकर कह उठती थी, 'माणविका !'

यह नाटक रेडियो-टेकनीक के आधार पर लिखा गया है, इसलिए यह ध्वनि-प्रधान है, सकेत तथा निर्देश-प्रधान नही है।

—लेखक

# मालव-प्रेम

श्री हरिकृष्ण प्रेमी

पात्र

जयकेतु : मालवगण का सेनापति।

विजया : जयकेतु की कुमारी बहिन।

श्रीपाल : विजया का प्रेमी।

स्थान : मालवदेश।

काल : विक्रमी संवत् के २५ वर्ष पूर्व।

(विक्रम संवत् के प्रारम्भ होने से लगभग २५ वर्ष पूर्व का काल। चम्बल-तट का एक ग्राम। विजया नदी-तट की एक शिला पर बैठी हुई गा रही है। समय रात का प्रारम्भ, विजया की वय १६-१७ वर्ष के लगभग है। उज्ज्वल गौरवर्ण, शरीर सुगठित लम्बा, अत्यन्त आकर्षक स्वरूप। आँखों में आकर्षण के साथ तेज। वेश सुरुचिपूर्ण होते हुए भी उसके स्वभाव के अल्हड़पन को व्यक्त करनेवाला। सिर से उत्तरीय का पहलू खिसक भूमि पर गिर गया है। उत्तरीय के अतिरिक्त एक दुपट्टा वक्ष और कन्धे के आसपास लिपटा पड़ा है। लम्बे बाल वायु में लहरा रहे हैं।)

विजया—(गान)

जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर?
जब नयन मैं मूदती, वह
छवि दिखा मुझको लुभाता।
जब बढ़ाती हाथ तब
कुछ भी नहीं है हाथ आता।
धूल में मिलते अचानक
स्वप्न होकर चूर।
जो निकट इतना वही है
हाय, कितनी दूर!
जो सजन बन 'नयन-तारा'
लोचनों में है समाया।

वह गगन का चाँद होकर
दूर से ही मुसकराया।
इसलिए थमता नही है
आँसुओं का पूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!
पालने में श्वास के है
हर घड़ी झूला झुलाया।
क्यों न उसने प्रेम मेरा
आज तक पहचान पाया।
मैं उसी को प्यार करने
के लिए मजबूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर?

**(विजया गीत गाने में तल्लीन है। श्रीपाल आकर उसकी नजर बचाकर उसके पास खड़ा रहता है। श्रीपाल एक बलिष्ठ और सुन्दर नवयुवक है। उसका वेश योद्धा का है। कमर में तलवार, हाथ में धनुष, कन्धे पर पीछे की ओर तरकश। वय लगभग २५ वर्ष।)**

**श्रीपाल** विजया!

**विजया** **(गाना बन्द करके खड़ी होकर, उत्तरीय का पल्ला सिर पर डालती हुई।)** तुम बड़े अशिष्ट हो श्रीपाल!

**श्रीपाल** ऐसे कोमल कंठ से ऐसे कठोर शब्द शोभा नही देते, विजया!

**विजया** तुम अपनी सीमा के बाहर जाते हो?

**श्रीपाल** मैंने तुम्हारा अपमान किया है क्या, विजया?

**विजया** अपमान तो नही किया?

**श्रीपाल** फिर ?

**विजया** यहाँ एकान्त में मुझे अस्त-व्यस्त भेष में देर तक चुपचाप खड़े देखते रहना !

**श्रीपाल** मै तुम्हें जीवनभर देखना चाहता हूँ, विजया !

**विजया** **(किंचित् लज्जा मिश्रित क्रोध से)** किस अधिकार से ?

**श्रीपाल** जिस अधिकार से चाँद तुम्हें इस समय देख रहा है।

**विजया** दूर रहकर आकाश से ?

**श्रीपाल** हाँ, तुम मेरे जीवन की प्रेरणा हो, स्फूर्ति हो। तुम्हारी स्मृति मेरे रक्त को गति देती है। तुम्हें पाने की इच्छा करना मेरे जीवन का जीवन है—लेकिन तुम्हें पा लेना मेरे जीवन की मृत्यु है।

**विजया** उधर देखते हो, श्रीपाल ! कहीं वर्षा हुई है, इसलिए चम्बल में जल बढ़ गया है।(धारा के दोनों ओर चट्टानें हैं। जल को फैलने को स्थान नहीं मिल रहा। वह कितना जोर कर रहा है। कितने वेग से आगे बढ़ रहा है।)

**श्रीपाल** हमारे तुम्हारे बीच में इससे भी बड़ी चट्टानें है, विजया !

**विजया** कौनसी चट्टानें ?

**श्रीपाल** तुम्हारा भाई जयदेव ! उसे अपने कुल का अभिमान है। मै एक साधारण किसान का पुत्र हूँ और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मालव जाति की कन्या हो।(आकाश की तारिका की ओर पृथ्वी पर पैर रखकर चलनेवाला प्राणी कैसे हाथ बढ़ा सकता है ?)

**विजया** यदि वह तारिका आकाश से उतरकर तुम्हारी गोद में आ गिरे तो ?

**श्रीपाल** मैं उसे स्वीकार नही करूँगा।

**विजया** क्यों ?

**श्रीपाल** मैं कृपा या दान नहीं चाहता।

**विजया** तो चोरी करना चाहते हो, डाका डालना चाहते हो। डाका डालना तो कायरता नहीं है?

**श्रीपाल** मैं इतना छोटा नहीं बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज की चोरी करनी पड़े।

**विजया** तब तुम क्या चाहते हो?

**श्रीपाल** बदला?

**विजया** किससे?

**श्रीपाल** तुम्हारे भाई से!

**विजया** अच्छा, तो इसीलिए तुमने शस्त्र पकड़े है?

**श्रीपाल** जो हल पकड़ना जानता है, वह शस्त्र पकड़ना भी जान सकता है।

**विजया** लेकिन उसका उचित प्रयोग करना भी जान पाये तब न?

**श्रीपाल** (मानवता का तिरस्कार करनेवालों—सृष्टि के चिरंतन-भाव-प्रेम का अपमान करनेवालों के विरुद्ध मेरा शस्त्र होगा।) जाता हूँ विजया! तुम मेरे जीवन की स्फूर्ति हो—मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

**(प्रणाम करता है)**

**विजया** तुम जा तो रहे हो, श्रीपाल! लेकिन मुझे भय है तुम मार्ग भूल जाओगे?

**श्रीपाल** तुम्हारा प्रेम मेरा मार्गदर्शक है।

**(श्रीपाल का प्रस्थान)**

**विजया** **(श्रीपाल की ओर देखती हुई)** विक्षिप्त युवक!

**(विजया कुछ क्षण स्तब्ध-सी खड़ी उसी ओर देखती रहती है जिस ओर श्रीपाल गया है। फिर एक लम्बी सांस लेकर शिला पर बैठ जाती है। कुछ क्षण विचार-मग्न रहकर वही गीत गाने लगती है। गीत आधा ही हो पाता है कि उसका भाई**

जयदेव प्रवेश करता है। जयदेव भी गौरवर्ण, बलिष्ठ शरीर, बड़ी आँखों और रोबदार चेहरेवाला नवयुवक है। सैनिक वेश-भूषा। कपड़ों से उसका सुसम्पन्न होना प्रकट होता है।)

**जयदेव** (विजया के कन्धे पर हाथ रखकर) विजया !

**विजया** (चौंककर) ओह, भइया !

**जयदेव** चौक क्यों उठी, बहन !

**विजया** मैं डर गई थी !

**जयदेव** मालव कन्या होकर डर का नाम लेती है, विजया !

**विजया** मैं शस्त्र की धार से नहीं डरती, सिंह के तीक्ष्ण नखों से नहीं डरती। मैं मनुष्य के शारीरिक बल से नही डरती। हिंसा से मैं लड़ सकती हूँ।

**जयदेव** फिर डरती किससे हो, लड किससे नही सकती !

**विजया** मनुष्य के प्रेम से। (दीन स्वर में) भैया !

**जयदेव** (विजया के मस्तक पर हाथ रखते हुए) क्या बात है, विजया ?

**विजया** मैं अपने हृदय पर विजय नही पा सकी हूँ। प्राणों में आठों पहर ज्वाला जलती है। तुम्हारी वंश-गौरव की दीवार मुझे रोक नही सकती। मैं विद्रोह करूँगी।

**जयदेव** किससे ?

**विजया** तुम्हारे अभिमान से। मेरे भाई मालव-कुल-भूषण जयदेव से !

**जयदेव** तुम मुझसे युद्ध करोगी ?

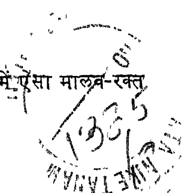
**विजया** हाँ।

**जयदेव** जीत सकोगी ?

**विजया** अवश्य !

**जयदेव** कैसे ?

**विजया** अपनी बलि देकर। इस शरीर को—जिसमें ऐसा मालव-रक्त



प्रवाहित है, जो मुझे प्रेम के स्वाधीन-प्रदेश में जाने से रोकता है—चम्बल के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित करके।

**जयदेव** बहन, तुझे हो क्या गया है?

**विजया** तुम तो सब जानते हो, भैया!

**जयदेव** यहाँ श्रीपाल आया था?

**विजया** हाँ!

**जयदेव** तभी तुम इतनी चंचल हो उठी हो! विजया, तुम्हें एक काम करना पड़ेगा।

**विजया** क्या?

**जयदेव** मालव-भूमि को श्रीपाल का मस्तक चाहिए।

**विजया** मालव-भूमि को या तुम्हें?

**जयदेव** मुझे नहीं मालव-भूमि को!

**विजया** लेकिन उसे तो तुमसे शत्रुता है मालव-भूमि से नही!

**जयदेव** वह मेरे अपराध का दण्ड मालव-भूमि को देना चाहता है।

**विजया** मालव-भूमि को या मालव-गण को?

**जयदेव** जब विदेशी शासन हमारे देश पर होगा तब क्या कोई जाति पराधीनता से बच सकेगी?

**विजया** विदेशी शासन मालव पर!

**जयदेव** हाँ, जिन शकों ने सिंध और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया है उन्हें श्रीपाल ने मालवा पर आक्रमण करने को आमंत्रित किया है।

**विजया** (तुम लोगों का वंशाभिमान अपने ही देश में देश के शत्रु उत्पन्न कर रहा है। तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खींच ले गई है।)

**जयदेव** जिस जाति ने सदा भारत के अंग-रक्षक बनकर आततायियों को देश में आने से रोका है, जिसने सिकन्दर महान् की विश्व-

विजयी यूनानी सेना को हजारो प्राणों की बाजी लगाकर वापिस लौट जाने को बाध्य किया उसे क्यों न अपने ऊपर गर्व हो? उसे अपनी सैनिकता एवं बल-विक्रम पर अभिमान क्यों न हो?

**विजया** (किन्तु जो जाति सैनिक नही है, क्या वह मनुष्य ही नही है? कार्य-विभाजन नीच-ऊँच की दीवारे क्यो खड़ी करे?)

**जयदेव** यह इन बातो पर विचार करने का समय नही है।

**विजया** एक श्रीपाल का मस्तक लेकर देश की रक्षा नही कर सकोगे?

**जयदेव** तू श्रीपाल और देश दो में से किसे चुनेगी?

**विजया** तुम देश और मानवता दोनों में से किसे चुनोगे?

**जयदेव** पराधीनता मानवता का सबसे बडा पतन है!

**विजया** और प्रेम?

**जयदेव** (जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोंटना ही होगा। श्रीपाल मालवा के मार्गों, नदी-पर्वतो से परिचित है। शक-सैन्य संख्या में हमसे अधिक है। उनके पास अपार अश्वारोहिणी दल है, अस्त्र-शस्त्र भी अपरिमित है। यदि उन्हें इस देश की भूमि से परिचित व्यक्ति मिल जाय तो परिणाम हमारे लिए भयंकर है। सोचो विजया, उस समय हमारे देश का क्या होगा?

**विजया** तुम मेरी हत्या कर दो भैया!

**जयदेव** तो तुम देश के महत्व को नही समझीं। तुम्हारे पिता, तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढियों ने इस भूमि की रक्षा में अपना रक्त सींचा है, बहन! कितनी बहनों ने अपने भाइयों को रणभूमि में विसर्जित किया है—कितनी सुन्दरियों ने यौवन के प्रभात काल में पतियों को स्वर्ग का मार्ग दिखाया है। यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नही है—यह देश का प्रश्न है! बोल बहन, तू क्या कहती है?

**(विजया चुप रहती है।)**

**जयदेव** तू सोचना चाहती हो, तो सोच ! तू मालव-कन्या है, विजया ! मैं अभी आता हूँ।

(जयदेव का प्रस्थान। विजया हतबुद्धि-सी खड़ी रहती है। फिर वही गीत गुनगुनाने लगती है। श्रीपाल प्रवेश करता है।)

**श्रीपाल** विजया !

**विजया** अच्छा हुआ तुम आ गए, नहीं तो मुझे तुम्हारे पास जाना पड़ता !

**श्रीपाल** हाँ, मैं आ गया हूँ। मैने अपना निश्चय बदल दिया है। मैं तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।

**विजया** लेकिन श्रीपाल, मैने अपना निश्चय बदल डाला है।

**श्रीपाल** क्या ?

**विजया** मुझे तुम्हारा मोह छोड़ना होगा ?

**श्रीपाल** फिर तुम मेरे पास क्यों आना चाहती थी !

**विजया** हम बचपन में एक साथ खेले हैं। अब जीवन का अन्तिम खेल भी तुम्हारे साथ खेल लेना चाहती हूँ। बोलो खेलोगे श्रीपाल !

**श्रीपाल** अवश्य, विजया !

**विजया** तो लाओ, तुम्हारे बलिष्ठ हाथों को मैं अपने उत्तरीय से बाँध दूँ !

**श्रीपाल** क्यों ?

**विजया** आँख-मिचौनी में आँखे बन्द करते हैं, लेकिन यह नए प्रकार का खेल है इसमें हाथ बाँधने पडते है। लाओ हाथ बढ़ाओ !

(श्रीपाल हाथ बढ़ाता है, विजया उसके हाथ अपने उत्तरीय से खूब कसकर बाँध देती है। दूसरी ओर से जयदेव का प्रवेश।)

**श्रीपाल** (जयदेव को देखे बिना ही) अब आगे ?

**विजया** आगे का खेल मेरे भैया खेलेंगे। (जयदेव की ओर उँगली उठाती है।)

**श्रीपाल** विजया, तुम ऐसा छल कर सकती हो इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी !

**विजया** मुझे इस बात का अभिमान है कि अपने प्रियतम को मैंने देश-द्रोह से बचा लिया।

**जयदेव** (**श्रीपाल से**) तुम मेरे अपराध का दण्ड अपनी मातृभूमि को देना चाहते हो।

**विजया** और देश ने तुम्हारे अपराध का दण्ड मुझे देने का निश्चय किया है!

**श्रीपाल** जयदेव, तुम वीर हो। साहस और पुरुषार्थ के लिए प्रसिद्ध मालव-जाति के गौरव हो, तुम छल द्वारा मुझे बन्धन में बाँधना पसन्द करते हो?

**जयदेव** इस समय देश के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न है श्रीपाल! उदारता के लिए अवकाश नहीं है।

**विजया** (**श्रीपाल से**) प्रियतम, मै अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ। (**गले से हार उतारकर पहनाती हुई**) यह मेरे प्रेम का अन्तिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयंवर है। आज मालव-जाति की परम्परा के विरुद्ध कृषक-कुमार श्रीपाल को मैं वर-माला पहनाती हूँ। मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी।

**श्रीपाल** मेरे हाथ बँधे हुए है, विजया! मैं तुम्हे कुछ प्रतिदान नही दे सकता। अपने प्रेम का कोई प्रमाण नही दे सकता।

**विजया** प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। तुम्हारे चरणों की रज मुझे मिल सकती है? मेरे लिए यही अमूल्य निधि है।

(**चरण छूती है।**)

# संस्कार और भावना

विष्णु प्रभाकर

## पात्र

माँ : संक्रांति काल की एक हिंदू नारी।

अतुल : माँ का छोटा पुत्र।

उमा : पुत्र-वधू; अतुल की पत्नी।

नौकर और मिसरानी

(स्टेज पर एक मध्यवर्गीय परिवार के घर के आँगन का दृश्य। पूर्व की ओर दो कमरे हैं, जिनके द्वार बंद हैं। पश्चिम भाग का द्वार बाहर जाता है, वह भी बंद है। उत्तर भाग में रसोई के आगे बरामदा है। दक्षिण में बड़ा बरामदा है, जिसका एक द्वार बैठक में जाता है, दूसरा बाहर। जो कुछ दिखाई देता है, वह स्वच्छ, सुन्दर और उच्च स्थिति का प्रतीक है। बैठक में एक सोफे का एक अंश दृष्टि में आता है। रसोई के पास स्वच्छता है और आलमारी में उचित सामान व्यवस्थित रूप से रखा हुआ है। आँगन में एक ओर पलंग पड़ा है, दूसरी ओर दो कुर्सियाँ तथा एक छोटा टेबुल। टेबुल पर नाश्ते के खाली बरतन हैं। पलंग पर उमा लेटी है। वह युवती और रूपवती है। पर्दा उठते समय वह कोहनी पर भार टिकाये शून्य में ताकती दिखाई देती है। साड़ी अस्त-व्यस्त है। कुंडलाकार कर्णफूल केशों में होकर कपोल पर आ गया है। आगे एक खुली पुस्तक है। वह पढ़ते-पढ़ते सोचने लगी है। सहसा धीरे से फुसफुसाती है।)

(अपने से बातें करती-सी) (जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते है, एक समय आता है, वे ही बातें हम चुपचाप स्वीकार कर लेते है।)

(फुसफुसा कर वह फिर पुस्तक देखती है; फिर शून्य में दृष्टि गड़ा देती है। उसकी आँखे गंभीर हैं, उसके मुख पर आनेवाली संध्या की रक्तिम आभा सौन्दर्य बखेर रही है। वह इतनी खोयी हुई है कि नौकर रसोई के बरामदे से आकर बरतन उठा ले जाता है, पर वह नहीं देखती। उसका सिर उसी तरह खुला रहता है और विदा की किरण कर्णफूल पर

चमकती है। उसी चमक में केशों की स्निग्धता उभर आती है तभी पश्चिम वाला बाहर का द्वार खुलता है। माँ अंदर आती हैं। वे वृद्धा हैं। उनका मुख वेदना से पूर्ण है। आँखों में पीड़ा है और शरीर में थकान। उन्होंने साड़ी पर गरम चादर ओढ़ी है। उनकी पगध्वनि सुनकर उमा चौंककर उठती और आँचल ठीक करती है। माँ उसी के पास आकर धम्म से बैठ जाती है। बैठती-बैठती कहती है।)

**माँ** (भर्राया स्वर) तूने सुना उमा?

**उमा** (अचरज) क्या माता जी?

**माँ** पिछले महीने अविनाश बहुत बीमार रहा था।

**उमा** सच?

**माँ** हाँ।

**उमा** उन्होंने तो कुछ नहीं बताया।

**माँ** वह क्या बताता! वह क्या वहाँ जाता है!

**उमा** फिर भी सुना तो होगा! आपसे किसने कहा?

**माँ** मैं कुमार के घर गयी थी। वहीं उसकी मिसरानी ने मुझे बताया। कहने लगी—तुम्हारा बड़ा बेटा तो बहुत बीमार रहा; मर कर बचा है। सुनकर मैं शर्म से गड़ गयी। मेरा बेटा बीमार रहे और मुझे पता भी न लगे। (आँसू भर आते हैं, स्वर लड़खड़ाता है) बचपन मे उसे कभी-कभी खाँसी भी हो जाती थी, तो मैं कई-कई दिन तक न खाती थी, न सोती थी। वे बहुतेरा समझाते थे, नाराज भी हो जाते थे, पर जी नही मानता था; और अब... (आगे बोला नहीं जाता। फूट-फूटकर रो पड़ती है। उमा करुणा से द्रवित उनको सम्हालती है।)

**उमा** (सांत्वना से भीगा स्वर) माताजी, माताजी! रोओ मत। न, इसमें आपका क्या अपराध है?

**माँ** **(उसी तरह)** अपराध और किसका है? सब मुझी को दोष देते हैं। मिसरानी कह रही थी।—वह कैसी भी हो, पर अपने प्राण देकर उसने पति को बचा लिया है। अकेली थी, पर किसी के आगे हाथ पसारने नहीं गयी। केवल एक-दो बार मिसरानी ने दवा ला दी थी, वरना स्वयं दवा लाती थी, घर का काम करती थी और फिर अविनाश को देखती थी...

**उमा** **(टोक कर)** पर माताजी! भाई साहब को क्या हुआ था?

**माँ** हैजा।

**उमा** **(चौंकती है)**...हैजा—आ...।

**माँ** मर कर बचा है, बेटी। दस दिन बीत गये, पर अभी तक दफ्तर नहीं जाता।

**उमा** कैसा अचरज है, उन्हें पता भी नहीं लगा!

**माँ** पता लगा भी हो तो क्या वह बताने वाला है!

**उमा** **(चोट खाकर)** पर माताजी, यह तो...

**माँ** **(विद्रूप से)** मैं जानती हूँ। मेरे ही तो बेटे हैं। माया-ममता किसी को भी नहीं छू गयी है। हर बात में देश, धर्म और कर्त्तव्य की दुहाई देना उन्होंने सीखा है। आखिर इनका बाप भी तो ऐसा ही निर्मम था। मुझे याद है, जिस समय अतुल छोटा-सा लड़का रहा था, बचने की कोई आशा नहीं थी, उस समय वे शांत मन उसको धरती पर लिटाने के लिए सामान हटा रहे थे। दुनिया ने दाँतों तले उँगली दबाकर कहा था—ऐसा भी क्या बाप, जो अपने बेटे के लिए भी नहीं रोता। उसी बाप के ये बेटे हैं। मुझे सदा उन्होंने माया-ममता में फँसी हुई कहकर कोसा है। सदा मेरी निन्दा की है।

**(चोट पर चोट खाकर उमा तिलमिलाती है। उसके भाव पलटते हैं; करुणा पहले खीज, फिर हल्के रोष में बदल जाती है।)**

**उमा** लेकिन माताजी ! इसमें सब दोष भाभी का है।

**माँ** वह तो है ही, पर बहू...

**उमा** (बात काटकर) मैं अच्छी तरह जानती हूँ, वे देखने में बड़ी भोली लगती है परन्तु...

**माँ** (चौंककर) भोली...

**उमा** हाँ, बहुत भोली, माताजी ! बहुत प्यारी। जो एक बार देख लेता है वह फिर उस रूप को नही भुला सकता। बार-बार देखने को मन करता है। बड़ी-बड़ी काली आँखें; उनमें शैशव की भोली मुस्कराहट, अनजान में ही लज्जा से लाल हुए कपोलो पर रहने वाली हँसी...

**माँ** (और भी अचरज) पर उमा ! तूने क्या अविनाश की बहू को देखा है ?

**उमा** (सम्हलकर) हाँ, माताजी।

**माँ** कब ?

**उमा** एक दिन जब आप उनसे गुस्सा होकर बहुत दुखी हो रही थीं तब मैं भाभी के पास गयी थी। दोपहर का समय था; आप सो गयी थी। सच माताजी ! तब उनके रूप को देखकर मैं चौंक उठी थी। बंगाली इतने सुन्दर होते हैं। मुझे देखकर वे मुस्करायीं, फिर गले में आँचल डालकर प्रणाम किया और जब मैंने अपना परिचय दिया तो गद्‌गद्‌ हो उठीं। मुझे छाती से लगा लिया...

**माँ** (वही विस्मय का स्वर) पर तूने तो मुझे कभी नही बताया !

**उमा** बताना ही नही चाहती थी।

**माँ** क्यो ?

**उमा** क्योंकि मैं उनसे लड़ने गयी थी।

**माँ** (भौंचक) लड़ने गयी थी ! ...

**उमा** जी हाँ! मैं उनसे लड़ने गयी थी, क्योंकि वे आपके दुःख का कारण थीं। वे न होती तो बड़े भइया आपसे अलग कैसे होते। यही बात मैंने उनसे भी कह दी थी।

**माँ** (उत्सुक) सच ?

**उमा** जी हाँ।

**माँ** तब ?

**उमा** तब पहले तो वे मेरी बात सुनकर मुस्करा दीं, फिर बोलीं—'इसमें मेरा क्या दोष है ? यह तो. . .।' मुझे तब क्रोध आ रहा था। बात काटकर मैंने कहा—'दोष तुम्हारा नहीं है तो किसका है? तुम न चाहती तो बड़े भइया माँ को कैसे छोड़ देते। तुम अब भी चाहो तो सब कुछ ठीक हो सकता है। तुम उन्हें छोड़ सकती हो। तुम. . .तुम. . .'

**माँ** **(चौंकती है)** उमा, उमा! यह कहा तुमने. . .?

**उमा** **(भावावेश)** हाँ, मैंने स्पष्ट कहा था। माँ को बेटे से अलग करना पाप है, माँ का हृदय तोड़ना अत्याचार है। उस अत्याचार को दूर करने के लिए प्राण भी देने पड़ें तो कम हैं।

**माँ** **(उत्सुकता)** तो उसने क्या कहा ?

**उमा** वह बोली—'बहिन, मैं मानती हूँ माँ-बेटे के संबंध से बढ़कर कोई सम्बन्ध नहीं है। पर पति से बढ़ कर पत्नी के लिए भी और कुछ नहीं है; पति भी वह जिसके लिए उसने समाज की ही नहीं, वरन् अपने हृदय की साक्षी दी है; जिसे वह प्यार करती है। उसके कहने पर वह प्राण दे सकती है, परन्तु उसको दुखी करके वह किसी को सुखी करने की कल्पना नहीं कर सकती। करेगी तो वह पापिन है। सोचो, तुम स्वयं पत्नी हो। यद्यपि तुमने मेरी तरह पति का वरण नहीं किया है, फिर भी तुम उन्हें प्यार करती हो. . .।' मुझे यह बात बुरी लगी; मैने

कहा—'सब पत्नियाँ अपने पतियों को प्यार करती है, मैं भी करती हूँ, प्राणों से अधिक प्यार करती हूँ।' सुनकर वे घबरायी नही, चौकी भी नही, बोली—'सबकी बात मैं नही कहती; इतना अधिकार मेरा नहीं है। पर यह मै जानती हूँ, तुम अपने पति को प्यार करती हो, तभी तो यहाँ आयी हो। मैं अतुल को भी जानती हूँ, उनका भाई है वह भी। कई बार मेरे पास आया है।'

माँ (हठात् चौककर) अतुल वहाँ गया है!

उमा हाँ, माताजी, उन्होंने यही कहा था। मुझे भी अचरज हुआ था। मैने पूछा—'वे यहाँ आते हैं?' तो हँसकर बोली—'डरो नही। वे भाई के पास नहीं आते; दफ्तर के काम से आते हैं। तुम्हारी बातें उन्होंने ही मुझे बतायी हैं। मैं जानती हूँ, तुम उन्हें प्यार करती हो। सोचो तो, कोई तुमसे कहे, तुम अतुल को छोड़ दो, क्योंकि उनकी माँ या उनका परिवार इस विवाह से नाराज है तो क्या तुम...'

मै आगे न सुन सकी। मैंने चिल्लाकर कहा—'भाभी, बस करो...' पर उन्होंने बात पूरी करके दम लिया, बोली—'तो क्या तुम उन्हें छोड़ दोगी? बोलो...'

तब मैने त्रस्त होकर कहा था—'नही भाभी! मै नही छोड़ सकूँगी। चाहूँ तब भी नही।' सुनकर वे मुस्करायी, कहने लगी—'अच्छा! अब छोडो इन बातो को। अभी तो आयी हो और तभी ले बैठी ये पचड़े। आओ अंदर चलें। पर माताजी! मुझे न जाने क्या हो रहा था। मेरा अंतर्मन काँपने लगा था; मै उन्हें देखती थी तो जैसे मोहिनी-सी छा जाती थी। मैं थी भी और नही भी थी! मोह-ग्रस्त आदमी होता भी है और नही भी होता। पर हुआ, यही, मैं वहाँ न ठहर सकी। वह पुकारती ही रह गयीं।

माँ (स्वप्न से जागकर) तो तुम चली आयी ?

उमा हाँ।

माँ (गंभीर वेदना का स्वर) उमा ! पर तुम वहाँ हो तो आयी। अतुल भी जाता है; तुम सब जाते हो; तुम जो निर्मम हो और मै जो, मोह-ममता में फँसी हुई हूँ, उसकी सूरत को तरसती हूँ। कैसी उल्टी बात है ?

उमा (क्षमा याचना का स्वर) पर माताजी ! हम क्या उनसे मिलने गये थे ? हम तो...

माँ (बीच में टोककर) कहते है, चेतन से अचेतन अधिक शक्तिशाली है। उसमें अधिक आकर्षण है। इसीलिए तुम एक दूसरे के प्रति खिचे। चाहे वह प्रेम था, चाहे घृणा थी, पर असल बात रक्त के खिचाव की थी, वह होकर रही। काश कि... (स्वर डूबता है) काश कि मै निर्मम हो सकती; काश कि मैं संस्कारों की दासता से मुक्त हो सकती। हो पाती तो कुल, धर्म और जाति का भूत मुझे तग न करता और मै अपने बेटे से न बिछुड़ती। स्वयं उसने मुझसे कहा था—'संस्कारों की दासता सबसे भयकर शत्रु है।'

उमा यह बड़े भइया ने कहा था ?

माँ हाँ, उसी ने कहा था। मैने उसे बहुत समझाया, अपने प्रेम की दुहाई दी, पर वह सदा यही कहता रहा—'माँ ! संतान का पालन माँ-बाप का नैतिक कर्त्तव्य है। वे किसी पर कोई अहसान नहीं करते, केवल राष्ट्र का ऋण चुकाते है। वे ऋण मुक्त हों, यही उनका परितोष है। इससे अधिक मोह है, इसीलिए पाप है।' पर मै क्या करूँ। मै जो इससे अधिक है, उसी को पाने को आतुर हूँ। मैं ही क्यों, सभी माता-पिता यही चाहते हैं। तभी मै समझती हूँ, उस डाकिन

ने मेरे बेटे को मुझसे छीना है। पर वास्तव में दोष उसका नहीं है।

उमा माताजी ! लगता तो मुझे भी ऐसा ही है।

(अतुल का प्रवेश। स्वस्थ युवक; साँवला रंग, मुख पर दृढ़ता और आँखों में सौम्यता। उसे देखकर उमा उठती है। क्षण भर उसे देखती है। वह सदा की तरह शांत है। फिर रसोई की ओर चली जाती है। अतुल सीधे आकर कुर्सी पर बैठ जाता है और माँ को देख कर कहता है।)

अ० क्या बन रहा है, माता जी ?

माँ (अनसुना करके) तूने सुना रे ?

अ० क्या ?

माँ अविनाश बहुत बीमार था।

(स्वर भीग जाता है)

अ० (जूता खोलते-खोलते) हाँ। उन्हें हैजा हो गया था।

माँ (अचरज) तू जानता था !

अ० हाँ।

माँ तूने मुझसे कहा तक नहीं।

अ० तुमसे कहता क्यों ?

माँ क्यों, क्या मैं उसकी माँ नहीं थी ?

अ० (मुस्कराता है) माँ तो हो, पर सुनकर क्या करतीं ? क्या उसके पास जाती ?

(माँ सहसा जवाब नहीं देती। अतुल फिर कहता है।)

अ० मैं जानता था, तुम वहाँ नहीं जा सकोगी; और जाने से भी क्या होता है। जब तक तुम उस नीची श्रेणी की विजातीय भाभी को घर नहीं ला सकती, तब तक प्रेम और ममता की दुहाई व्यर्थ है। तुम सब निर्मम हो, निर्मम...

माँ (बीच में रोक कर) मैं निर्मम हूँ?

अ० निर्मम ही नही, कायर भी। जिन संस्कारो मे तुम पली हो, उन्हें तोड़ने की शक्ति तुममे नही है माँ!

(उमा फिर प्रवेश करती है। उसके हाथ में चाय की ट्रे है, जिसे वह कमरे में ले जा रही है, पर बात सुनकर रुकती है। कहती है:)

उमा लेकिन आपमे तो है; आप तो वहाँ गये होंगे?

अ० मुझे वहाँ जाने के लिए कोई काम नही था, इसलिए नही गया।

उमा— } एक साथ { आप भी नही गये! (प्याले झन-झनाते है)

माँ— } एक साथ { है, तू भी नही गया!

अ० जाकर क्या करता?

उमा (विद्रूप से) भाई के मरने का समाचार सुनकर भी आपका हृदय नही पसीजता?

अ० (शांत स्वर) उमा, यदि तुम भाई साहब को जानती होती तो ऐसी बात नहीं कहती। मुझे तो क्या, वे मेरे डाक्टर को भी अपने पास नही आने देते।

उमा लेकिन फिर भी आप उनके भाई थे, आपको देखकर उन्हें शांति मिलती। वे...

अ० (उठता है और नौकर को पुकारता है) रामसिह, पानी ले आओ।

(शीघ्रता से कोई चलता है। आवाज आती है।)

आवाज लाया, सरकार।

अ० (उमा की ओर मुड़कर) देखो उमा, भाभी से बढ़कर भइया का और कोई नही है, यह कटु सत्य हमे स्वीकार करना ही चाहिए।

इसलिए उनके होते हमें कुछ भी करने का अधिकार नहीं था और न है।

(उमा त्रस्त होकर चली जाती है। माँ भी उठती है। नौकर पानी ले आया है। अतुल हाथ-मुँह धोने लगता है। कई क्षण केवल पानी गिरने का शब्द होता रहता है। फिर बाहर का द्वार खुलता है। मिसरानी प्रवेश करती है। प्रौढ़ा है और एक फटी हुई ऊनी चादर ओढ़े है। सिमटी-सी अतुल को देखती हुई अन्दर चली जाती है। अतुल उसे देखकर भी नहीं देखता। फिर अन्दर से बातें करने का स्वर उठता है, शीघ्र ही वह तीव्र हो जाता है। सूर्य की किरणें धीरे-धीरे विदा देती हैं। संध्या विश्व के रंगमंच पर प्रवेश करती है, थके विश्व को सहलाने के लिए। तभी माँ कमरे से बाहर आती हैं। वे अब और भी उद्विग्न हैं। उनके पैर डगमगाते हैं। वाणी रुँध जाती है।)

**माँ** अतुल! तूने और भी सुना?

**अ०** क्या माँ?

**माँ** अब अविनाश अच्छा हुआ तो उसकी बहू बीमार पड़ गयी। कहते है, उसके बचने की कोई आशा नहीं है।

**अ०** हाँ, सुना तो है।

(उमा का प्रवेश)

**उमा** क्या सुना है?

**अ०** यही कि भाभी मरणासन्न है।

**उमा** (चकित) क्या—?

**माँ** तो मुझे यह भी पता है।

**अ०** ( हाँ माताजी, मुझे पता है और यह भी पता है कि अपने प्राण

खपा कर भाभी ने भइया को तो बचा लिया था, परन्तु भइया के पास भाभी को बचाने के लिए प्राण नही हैं।

माँ (**अनसुना करके**) अतुल, तो अविनाश की बहू मर जायेगी?

अ० सुना तो ऐसा ही है।

**(उमा अचरज से माँ को देखती है, फिर पति को)**

उमा आप क्या कह रहे हैं? आप वहाँ क्यों नहीं गये? नही नहीं, आप वहाँ जाइये।

अ० (**उसी तरह शांत**) कोई लाभ नही होगा उमा! भइया में एक दोष है—वे जो कहते है, करना जानते है। उनके पास पैसा नही है, परन्तु उसके लिये वे किसी के आगे हाथ नही पसारेंगे। वे फौलाद के समान है, जो टूट जाता है पर झुकता नही।

उमा (काँपकर) लेकिन भाभी को कुछ हो गया—तो?

अ० (**गम्भीर**) भाभी को कुछ हो गया तो...तो क्या होगा? (**सहसा काँपकर**) नही उमा। इससे आगे सोचने का अधिकार मुझे नही है।

**(सहसा माँ आगे बढ़ जाती है।)**

माँ लेकिन मुझे तो है।

अ० (**उसी तरह**) अधिकार तो तुम्हे भी नही है माँ। पर तुम सोचो तो तुम्हें कोई रोक भी नही सकता।

माँ (**उद्विग्न**) तो मैं सोचती हूँ, अविनाश की बहू को कुछ हो गया तो...तो शायद अविनाश भी...

**(आगे शब्द नहीं निकलते। वाणी फट पड़ती है। उमा अवाक् उन्हें देखती है।)**

उमा (**चकित दुखित**)—माताजी, माताजी!

माँ हाँ बेटी! मै उसे जानती हूँ, वह नही बचेगा, नही बचेगा।

उमा (**कंपित स्वर**) माताजी, आप क्या कह रही है!

अ० (गम्भीर) माँ ! तुम इतना जानती हो ?

माँ हाँ उमा, अतुल ! मैं ठीक कह रही हूँ। वह नही बचेगा। उसे बचाने की शक्ति केवल मुझी मे है, केवल मुझी मे...

(फिर अचरज)

उमा }
अ० } एक साथ { माँ...

माँ (उसी तरह) अतुल, इसीलिए कहती हूँ, तू एक बार मुझे उसके पास ले चल। वह निर्मम है, पर मैं माँ हूँ। मुझे निर्मम नही होना चाहिए। मै उसके पास चलूँगी।

(उमा हर्ष से काँपती है। अतुल उसी तरह गम्भीर है।)

उमा माँ, तुम कितनी अच्छी हो !

अ० (गम्भीर) अभी चलो माँ; पर चलने से पहले एक बात सोच लो। यदि तुम उस नीच कुल की विजातीय भाभी को इस घर में नही ला सकी तो जाने से कुछ लाभ नहीं होगा।

माँ (अपेक्षाकृत शांत) जानती हूँ अतुल ! इसीलिए तो जा रही हूँ।

अ० (हर्षित स्वर) ऐसी बात है तो चलो माँ, अभी चलो। (पुकार कर) रामसिंह ! ताँगा लाओ, अभी इसी वक्त। और उमा, तुम भी चलो, शीघ्र उमा...

(कहता हुआ वह बड़े कमरे से होकर बाहर जाता है। उसकी आँखें भर आयी हैं। माँ और उमा कई क्षण तक शून्य में ताकती रहती हैं। वातावरण में शांति और स्निग्धता है। सहसा उमा को पुस्तक के वाक्य याद आ जाते है। वह फुसफुसाती है।)

उमा जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते है, एक समय आता है, जब चाहे किसी कारण से भी हो, हम उन्ही बातों को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।

(उसका मुख प्रकाश से मुखरित हो उठता है। नौकर ने पीछे से स्विच दबा दिया है। यहीं पर परदा गिर जाता है।)

# नीली झील

डा० धर्मबीर भारती

घटन-काल

ईसा जन्म के १९५० वर्ष बाद

पात्र :

नीली झील का तांत्रिक

नीली झील की पहली सन्तान

नीली झील की दूसरी सन्तान

नीली झील की आत्माहीन सन्तान

अजब से बेडौल शक्ल वाले, काले-कुबड़े पर्वत शिखर, जिनको बीच-बीच में टेढ़े-मेढ़े रहस्यमय साँपों जैसे दर्रे चीरते हुए अँधेरे में खो जाते हैं। चट्टानें जहाँ खत्म होती है वहाँ से झील तक भूरी, सुनहरी, सूखी घास वाले मैदान की एक चन्द्राकार पट्टी है। उसके बाद शांत नीली झील है, ज्यामिति के अठकोण के आकार की। किनारे पर एक बिलकुल अपरिचित ढंग का पेड़ है जिसमें झील के आकार और रूप-रंग के बड़े-बड़े लम्बे पत्ते। पेड़ की कई जड़ें फूटी हैं।

पहाड़ों पर एक हल्का आलोक छाया है जिसमें कोहरे की एक हल्की चादर किसी विशाल गरुण के पंखों की तरह छाई है। सारा दृश्य इन्द्रजाल मालूम होता है। न पहाड़ असली है, न पेड़, न कोहरा, न झील और न बाँसुरी का वह संगीत ही इस लोक का मालूम होता है जो, जादू के इन नकली रहस्यमय, पहाड़ों में रह-रह कर गूँज उठता है। बाँसुरी की तेज होती हुई आवाज के साथ कोने की एक बड़ी चट्टान को हाथ से हटाते हुए एक बूढ़ा प्रवेश करता है। झील के रंग की पोशाक, माथे पर रक्त-चन्दन, बाल भौंह तक हिमश्वेत हैं। पीठ दोहरी हो गयी है। गर्दन काँपती है। स्टेज पर आकर झील के किनारे वह रुक जाता है। झुककर झील में अपनी छाया देखता है और फिर दर्शकों की ओर देखता हुआ कहता है :—

नीली झील! मैं नीली झील का बूढ़ा तान्त्रिक हूँ। मेरी इन बूढ़ी आंखों ने न कभी झील को सूखते हुए देखा है और न विक्षुब्ध होते हुए। इन काली-सूखी, नंगी और क्रूर चट्टानों के बीच यह झील हममें रस का संचार करती है, हमें जीवन देती है। हम

और हमारी जाति लाखों वर्षो से इन्हीं चट्टानों के बीच, इसी झील के किनारे रहते आये हैं।

स्टेज पर एक ओर से एक व्यक्ति बाँसुरी लिये हुए और दूसरी ओर से दूसरा व्यक्ति एक हाथ में हँसिया, दूसरे में धान के पूले लिये आता है।

[यह हमारी जाति के लोग हैं, जो चट्टानों की छाती तोड़कर जिन्दगी उगाते हैं और बाँस की टहनियों को गुदगुदा कर संगीत बिखेरते हैं।]

**पहला व्यक्ति** ये चट्टानें हमे बल देती हैं।

**दूसरा व्यक्ति** ये वृक्ष हमे छाया देते है।

**पहला व्यक्ति** यह झील हमें जीवन देती है।

**दूसरा व्यक्ति** हम झील के किनारे चट्टानो के बीच, फूलो की तरह खिलते है।

**पहला व्यक्ति** हम धूप और वर्षा, रेत और तूफान झेलकर फूलों की तरह मुर्झा जाते है।

**दूसरा व्यक्ति** फिर माँ धरती अपनी बाहें खोलकर हमे सुला देती है...

**पहला व्यक्ति** और हमारी हड्डियाँ भी जमकर चट्टान बन जाती है।

(तान्त्रिक पुनः आगे आता है।)

**तान्त्रिक** मुझमें चट्टानों से लड़ने की ताकत नही रही। मेरी इन धुधली आँखों ने तिरसठ चन्द्रग्रहण देखे है। मेरी इन मुट्ठियों ने सवा सौ फसलें काटी है। अब मैं चट्टानों से नही लड़ सकता। अब मै तान्त्रिक हूँ, ये फसलो की देख-भाल करते है।

**पहला व्यक्ति** और तान्त्रिक हमारी आत्मा की देख-भाल करता है।

**दूसरा व्यक्ति** (जैसे चरवाहे भेड़ो की गिनती रखते है वैसे तान्त्रिक हमारी आत्मा की गिनती रखता है।)

तान्त्रिक — जब ये झील के किनारे चलते है, इनकी परछाई झील मे लहराती है। जिस दिन इनमे से कोई अपनी आत्मा कही खो आता है, उस दिन झील क्रुद्ध हो जाती है। उस दिन इनकी परछाई झील मे नही झलकती। उस दिन मैं इनमे पूछता हूँ—तुम्हारी आत्मा कहाँ गई और उस दिन जो निरुत्तर हो जाता है, उसे इन अन्धी घाटियों से अपनी आत्मा खोजने अकेले जाना पड़ता है, बिलकुल अकेले।

पहला व्यक्ति — **(मायूसी और भय से)** उनमे से कोई आज तक लौट कर नही आया।

**(इसी बीच बाई ओर के पहाड़ों में से एक बिलकुल आधुनिक ढंग की पोशाक पहने व्यक्ति, हाथ में एक सुन्दर थैला लिये धीरे-धीरे स्टेज के किनारे आकर खड़ा हो जाता है, ठिठका हुआ-सा। उसे देखते ही दूसरा व्यक्ति सहम कर बूढ़े तान्त्रिक का कन्धा छूकर संकेत से आगन्तुक को दिखाता है।)**

दूसरा व्यक्ति — **(आकुलता से)** कौन है यह?

पहला व्यक्ति — **(विरोध के स्वर में)** यह कहाँ से आया?

दूसरा व्यक्ति — **(आकुलता से)** हम पर कोई आपत्ति आने वाली है।

तान्त्रिक — **(बूढ़ी आँखों पर काँपती हुई हथेली रखकर ध्यान से देखता हुआ)** कौन हो तुम? **(आगन्तुक खामोश)**

दूसरा व्यक्ति — यह हमारा देश है। नीली झील की सन्तानो का देश है।

पहला युवक — यहाँ हमारे पूर्वज रहते आये हैं। यहाँ उनकी हड्डियाँ चट्टान बन गयी है।

**(आगन्तुक खामोश रहता है पर आगे बढ़ता है।)**

तान्त्रिक — यहाँ न कोई जिन्दा आ पाता है, न यहाँ से वापस जिन्दा

जा पाता है। **(आगन्तुक खामोश बढ़ता है)** पागल लड़के लौट जा, सिवा नीली झील की सन्तानो के, यहाँ कोई कदम नही रख सकता।

पहला व्यक्ति तुम्हारी हड्डियो मे मोर्चा लग जायगा।

दूसरा व्यक्ति तुम्हे नीली झील निगल लेगी।

आगन्तुक मैं भी नीली झील की सन्तान हूँ।

तान्त्रिक तुम ?

आगन्तुक हाँ मैं, आज से बीस चन्द्रग्रहण पहले पछुआ हवाओ के पीछे-पीछे मै यहाँ से चला गया था, उधर उस देश मे जहां झीलें बाँध दी गयी है, जहाँ नदियो मे रोगनी खीची जाती है।

तान्त्रिक अच्छा याद आया। हम लोगों ने तुम्हारी बहुत खोज की। तुम नही मिले, तो हमने पूज्य पर्वतो मे तुम्हारे कल्याण की कामना की।

पहला व्यक्ति हमने तुम्हारे लिए नीली झील से कुशलता का आशीर्वाद माँगा।

तान्त्रिक और तुम्हे नीली झील ने वापस बुला लिया। इधर आओ, तुम्हे देखूँ। **(तान्त्रिक स्नेह से उसकी बाँह टटोलता है। दोनों व्यक्ति आश्चर्य से उसकी पोशाक छूते हैं। उसका थैला देखते हैं।)**

आगन्तुक मैंने उस देश मे दिग्विजय की और जब कुछ भी ऐसा न बचा जिसे मै जीत सकूँ तो मुझे याद आयी नीली झील की। मैं पर्वतों और झीलो को अर्पण करने के लिए सोना लाया हूँ। **(सोना निकालता है।)**

पहला व्यक्ति **(आश्चर्य से)** सोना।

दूसरा व्यक्ति **(लालसा से)** सोना।

तान्त्रिक (डाँटकर) सोना ! रख दो उसे। तो तुमने वहाँ सोना निकलवाया।

आगन्तुक मैंने जंगलों से काले हब्शी पकड़े। उनसे खानें खुदवाई, उनको कोड़े लगवाये और उनसे सोना निकलवाया।

तान्त्रिक और क्या किया उस सोने से ?

आगन्तुक मैंने उस सोने से औरतें खरीदी, उन औरतों के लिए हाथी-दाँत की शैय्या और मोती के हार खरीदे।

पहला व्यक्ति हार ! कितना सुन्दर है यह। **(तान्त्रिक ताड़ना की नजर से देखता है, वह चुपचाप हार रख देता है।)**

तान्त्रिक और ?

आगन्तुक और उनके लिए बारीक कपड़े खरीदे जिनमें वे और भी निर्लज्ज दीख पड़े।

तान्त्रिक और ?

आगन्तुक और जब उन गुलामो, उन औरतो और उनके पिलपिले बच्चों से तबियत ऊब गयी तो मैंने फौलाद की भट्ठियाँ बनवायी जिनमें उन्हें घास-फूस की तरह झोंक दिया।

पहला व्यक्ति फौलाद की ?

आगन्तुक हाँ, फौलाद की भट्ठियाँ। उनको लोग मशीनें कहते है। लेकिन उन मशीनो ने उन गुलामों और औरतों को पीसकर और भी चतुर बना दिया और वे पता नही किस चीज के लिए लड़ने लगे, जिसे वे **(याद करते हुए)** अधिकार कहते थे।

तान्त्रिक तब ?

आगन्तुक तब मैंने भी उसी अधिकार की बात कहनी शुरू की। और एक ओर उन मशीनो और दूसरी ओर उन गुलामों पर कब्जा जमाया और मेरे हाथ में राजदण्ड आ गया और..

तान्त्रिक — औ।र ?

आगन्तुक — और तब प्रजाओं का राज्य हुआ! प्रजातन्त्र! सत्ता मेरे हाथ में थी, तंत्र प्रजाओं का था। फिर प्रजातंत्र दो हुए। सोने के प्रजातंत्र और जनता के प्रजातंत्र, और सोना मेरा था और जनता के दिमागों पर कब्जा मेरा था और प्रजातंत्र दो थे, एक का तानाशाह मैं था और दूसरे का तानाशाह भी मैं था और मै अपने से लड़ने लगा।

तान्त्रिक — तुम अपने से लड़ने लगे ?

आगन्तुक — हाँ। नही; मैं तो सिर्फ हुक्म देता था। एक ओर से मेरी प्रजाएँ लड़ती थी और दूसरी ओर से मेरी प्रजाएं लडती थी और एक ओर से मेरी प्रजा का रक्त बहता था और दूसरी ओर से मेरी प्रजाओं का रक्त बहता था, इस तरह एक युद्ध हुआ, दूसरा युद्ध हुआ, तीसरा युद्ध हुआ, और प्रजाओं को खून का चस्का लग गया और वे कटती-मरती रही. . .मै उनका सोना, उनके कपड़े, उनका अन्न, उनका वैभव, उनका तेज, उनका बल ले कर चला आया नीली झील के देश में।

तान्त्रिक — तो तुम उस देश से अपना सोना सही-सलामत ले आये ?

आगन्तुक — मै उस देश से उनका सोना सही-सलामत ले आया।

तान्त्रिक — तुम उस देश से अपना अन्न, बल, वैभव, तेज सही-सलामत ले आए ?

आगन्तुक — मै उस देश से प्रजाओं का अन्न, वल, वैभव, तेज सही-सलामत ले आया।

तान्त्रिक — और अपनी आत्मा ?

आगन्तुक — —आत्मा ?

तान्त्रिक तुम उस देश से अपनी आत्मा सही-सलामत ले आये?

आगन्तुक आत्मा, आत्मा क्या?

तान्त्रिक इतनी जल्दी भूल गये? (हँसकर) याद करो, तुम यहाँ से एक आत्मा भी ले गये थे?

आगन्तुक मै ले गया था यहाँ से?

तान्त्रिक याद करो, तुम जब इन चट्टानों की गोद में खेलते थे, तो इन चट्टानो ने तुम्हें एक आत्मा दी थी, जो इन्ही चट्टानों की तरह अटूट और दृढ थी, इन्ही की तरह विराट और निर्लेप थी। इन्ही की तरह...

आगन्तुक आत्मा, चट्टानो की तरह?

तान्त्रिक याद करो, जब तुम इस नीली झील के किनारे बैठकर बाँसुरी बजाया करते थे तो लहरो के साथ नाचती हुई एक परछाई आती थी और तुम्हारे पैरों के पास शान्त जल में सोई हुई तुम्हारा गीत सुनती थी। वह नीली झील के समान स्वच्छ और गहरी थी, वह झील की सतह पर साँवले कमल की तरह खिलती थी।

आगन्तुक साँवले कमल की तरह!

तान्त्रिक याद करो, तुम इस पेड की छाँह मे बैठते थे, तो एक आत्मा आशीर्वाद की तरह तुम पर छाई रहती थी। वह पेड इस पेड़ की तरह धरती की गहराइयों से अंकुरित हुई थी। वह सोधी मिट्टी से जीवन खीचती थी और अन्धकार की पर्तें तोडती हुई दिन-रात ऊँचे उठती थी, आकाश की ओर बढ़ती थी, पवित्रता की ओर बढती थी।...

आगन्तुक पवित्रता की ओर? मुझे कुछ भी याद नही आता। मैं यहाँ से कोई आत्मा नही ले गया।

तान्त्रिक — तुम झूठ बोलते हो, तुमने राजदण्ड मे अपनी आत्मा की हत्या कर दी, उसे सोने के मकबरे में दफन कर दिया। तुम्हारे राजदण्ड पर गाढे खून के दाग है। तुम्हारे सोने पर मक्खियाँ बैठ रही है।

आगन्तुक — **(चीखकर)** मैंने किसी की हत्या नही की। तुम झूठ बोलते हो।

तान्त्रिक — **(शान्त)** मैं झूठ बोलता हूँ? इधर आओ इस झील के किनारे खड़े होओ। इसमें झुककर देखो। क्या देख रहे हो?

आगन्तुक — कुछ नहीं दीख रहा।

तान्त्रिक — **(दूसरे व्यक्ति से)** इसके क्या अर्थ हैं?

दूसरा व्यक्ति — इससे मालूम होता है कि यह आदमी अपनी आत्मा कही खो आया है।

तान्त्रिक — **(पहले व्यक्ति से)** अपनी बाँसुरी दो इसे। **(आगन्तुक से)** फूंको इसे **(बाँसुरी खामोश)** इसके क्या अर्थ है?

पहला व्यक्ति — इसकी आत्मा मर गयी है। इसमें प्राण नही, साँस नही, संगीत नही।

तान्त्रिक — ठीक, **(आगन्तुक आगे बढ़ता है)** खबरदार, वही खडे रहो। यह महान् व्यक्ति नीली झील की दिग्विजयी सन्तान है। इसकी पीठ पर सोना है और हाथ मे राज-दण्ड और यह आत्माहीन है। **(दोनों व्यक्तियों से)** दूर रहो, इसकी छाँह जिस पर पडेगी उसकी पसलियों के नीचे पजे निकल आवेंगे, उसके दिमाग मे कीडे रेगने लगेंगे... **(उसके चारों ओर एक वृत्त खींचता है)** इस के आगे मत बढना...मत बढना। **(दूसरे व्यक्ति से)** जाओ, घाटी मे मुनादी करा दो कि कोई बच्चा

झील के किनारे खेलने न आये, गृह-वधुएँ द्वार बन्द कर लें। किसी पर इस व्यक्ति की छाँह न पड़े। कह दो कि वह नीली झील की गौरवमयी सन्तान है जो २० चन्द्रग्रहणो के बाद सोना और राजसत्ता जीतकर आयी है, पर अपनी आत्मा की हत्या कर आयी है।

आगन्तुक यह झूठ है।

**(दूसरा व्यक्ति जाता है, जाते समय लालच भरी निगाह से घूम-घूमकर सोने की ओर देखता है।)**

तान्त्रिक झूठा आरोप है। तुमको विश्वास नही होता। अच्छा मै तुम्हें दिखाता हूँ पवित्रता की राजकुमारी हमारी आदि जननी यह नीली झील कभी झूठ नही बोलती। **(पहले व्यक्ति से)** इधर आओ, झील के किनारे खड़े हो। मन मे एक ताजे कमल की कल्पना करो जिसमे एक हजार एक पखुडी हों... **(मंत्र-सा पढ़ता है)** मैं तुम्हारी आत्मा को तुमसे अलग करता हूँ, मै तुम्हारी आत्मा को अतीत के अँधियारे देश मे भेजता हूँ...मै तुम्हारी आत्मा को इतिहास के बीते हुए मगर अलिखित अध्यायों मे भेजता हूँ। तुम्हारी आत्मा क्या देख रही है?

पहला व्यक्ति नीली झील में काले पहाड़ काँप रहे है और उन पर एक घायल हिरणी दौड़ रही है।

तान्त्रिक वह इसकी आत्मा है।

पहला व्यक्ति काले गुलाम एक चट्टान उलट रहे हैं। वह सोना बटोर रहा है। चट्टान के नीचे एक फूल की झाड़ी कुचली गयी है।

तान्त्रिक वह इसकी आत्मा है।

आगन्तुक (भय से चीखकर) यह झूठ है।

पहला व्यक्ति — हाथी दाँत की मेज पर एक लड़की सिसक रही है, उसके गोरे अगों पर गन्दे घाव हैं।

तान्त्रिक — वह इसकी आत्मा है।

आगन्तुक — यह सब झूठ है।

पहला व्यक्ति — फौलाद की भट्ठियाँ एक बच्चे को निगल रही है। प्रजाएँ एक दूसरे का गला घोंट रही है, मैदानों पर खून के धब्बे है। एक औरत इसकी बाँहों से छूटकर काली चट्टानों पर भाग रही है। यह उसका पीछा करता है, वह भागती है। नीली झील खून की तरह लाल हो गयी है। वह चीखकर उसमे कूद गयी है, लहरें उसे निगल रही है। वह अथाह रक्त में डूब रही है, डूबती ही जाती है।

तान्त्रिक — वह इसकी आत्मा है।

आगन्तुक — **(घुटनों में सिर छिपा लेता है)** सच है, (बहुत मायूस स्वर में) बिल्कुल सच है।

पहला व्यक्ति — इसने हत्या की है **(सिर उठाकर रक्तमय नेत्रों से)** आत्मा की, इसने हत्या की है।

**(दूसरा व्यक्ति लौटता है।)**

दूसरा व्यक्ति — **(हवा में किसी का गला घोंटता हुआ)** इसे नीली झील में फेंक देना चाहिए। तुमने कभी किसी का गला घोंटा है।

पहला व्यक्ति — नही, गला घोंटने में भी कोई आनन्द होगा तभी तो इसने. . . **(दौड़कर आगन्तुक का गला पकड़ता है।)**

तान्त्रिक — दूर रहो, तुम पर इसकी छाया पड़ गयी।

दूसरा व्यक्ति — मैं इसका सोना लूँगा **(सोना लेता है)**

पहला व्यक्ति — **(गला छोड़कर दूसरे व्यक्ति का हाथ पकड़ता है)** सोना मै लूँगा, तुम मोती लो।

दूसरा व्यक्ति सोने पर मेरा हक है।

तान्त्रिक **(आगे बढ़कर)** खूंखार भेड़ियो! पीछे हटो! नीली झील में तुम्हारी परछाई हिल रही है। मैं कहता हूँ, वापस जाओ। वरना मैं आदेश दूँगा और पेड़ की डाले अजगर की तरह तुम्हें मरोड़ देंगी।

**(वह आगे-आगे बढ़ता है। दोनों व्यक्ति मंत्रमुग्ध-से पीछे हटते हैं, हटते-हटते पहाड़ों के पीछे चले जाते हैं। आगन्तुक उठता है, झील में देखता है और फिर भयभीत होकर मुँह ढक लेता है। तान्त्रिक आकर उसके कंधे पर हाथ रखता है।)**

आगन्तुक मुझे छुओ मत। मुझे हत्या लगी है। मैने हत्या की है। उन्हें बुलाओ। वे मुझे चट्टानो से कुचल दें।...

तान्त्रिक नही मेरे बच्चे, तुम मरोगे नही।

आगन्तुक ये चट्टानें मुझसे बदला लेंगी। यह झील मुझसे बदला लेगी। मैं आत्माहीन हूँ।

तान्त्रिक यह झील तुम्हें क्षमा कर देगी। मैं बूढ़ा हूँ। मैं स्वत्वहीन हूँ, निरर्थक हूँ। तुम्हारे पाप मैं अपनी आत्मा पर ले लूँगा। मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा। **(घुटने टेककर प्रार्थना करता है)** ओ अनन्त करुणामयी झील, इसे क्षमा करो। ओ विराट् पहाड़ो, इसने अपनी आत्मा की हत्या कर डाली है। इसके लिए इससे बड़ी सजा और क्या हो सकती है कि यह अपनी आत्मा से वंचित हो गया है। इसे क्षमा कर दो। इसे जीवनदान दो। इसे नयी आत्मा दो।

आगन्तुक **(सन्देहशील और आश्वस्त मिश्रित भाव से)** नई आत्मा?

तान्त्रिक — क्यो नही ? तुम मरोगे नही। नई आत्मा ढूँढने के लिए जीवित रहोगे।

आगन्तुक — मैं ?

तान्त्रिक — हाँ तुम ! नई आत्मा ढूँढने के लिए वापस जाओ उसी देश मे जहाँ युद्ध हो रहे है, जहाँ प्रजाएँ रक्तपात कर रही है। जहाँ फौलाद की भट्ठियाँ धधक रही है। जाओ, उस सघर्ष का अर्थ समझो। अधेरे मे विद्रोह करो, प्रकाश पर आस्था रखो, तुम्हें नयी आत्मा मिलेगी।

आगन्तुक — सच ?

तान्त्रिक — जाओ ! आगे बढ़ो ! (**स्टेज की सीढ़ियों की ओर संकेत करते हुए**) उतरो, जिन्दगी में उतरो (**आगन्तुक दोनों बाहें फैलाते हुए आँख खोले हुए अन्धों-जैसा टटोलता हुआ आगे बढ़ता है**) तुम अन्धकार मे हो। तुम प्रकाश की ओर बढ रहे हो (**दर्शकों तक पहुँच जाता है**) डरो मत, घबराओ मत। आस्था से विचलित मत होओ। लोगों में ढूँढो, जनता को छुओ, जिन्दगी मे उतरो। तुम्हें नयी आत्मा मिलेगी। साहस मत खोओ। तुम लौटकर आओगे तो झील पर तुम्हारी परछाई पूनम के चाँद की तरह तैरेगी। चट्टानें बाहें फैलाकर तुम्हारा स्वागत करेगी (**दर्शकों की ओर देखकर**) वह तुम्हारे बीच मे डोल रहा है। वह आत्माहीन छाया तुम्हें छू रही है, लेकिन घबराओ मत ! वह अपनी आत्मा ढूँढ रहा है। उसे सहारा दो। उसकी मदद करो (**धीरे-धीरे पीछे का पर्दा गिरता है। आगन्तुक धीरे-धीरे स्टेज पर लौट आता है**) मैं तो बूढ़ा हूं। मैं नही रहूँगा। ये पहाड़ टूट गिरेंगे। वह झील सूख

जायगी। ये पेड़ उजड़ जायेंगे। यह झूठ था—नीली झील, यह घाटी इसके लोग—यह सब मेरी कल्पना थी, मेरा इन्द्रजाल था। असल था, सत्य था केवल वह जो दोनो बाँहे फैलाये अपनी आत्मा ढूँढ रहा है। वह हमारे और तुम्हारे माध्यम से आवेगा। भविष्य की दुनिया उसकी होगी। तब न मैं रहूँगा, न मेरा इन्द्र-जाल। न तुम, न तुम्हारी कला। रहेगा सिर्फ वह जो आज अपनी नयी आत्मा ढूँढ़ रहा है...वह तुम्हारे व्यक्तित्व को छुएगा, तुम्हारी आत्मा मे उतरेगा। क्योकि तुम्हारे व्यक्तित्व और तुम्हारी आत्मा मे उस आत्माहीन को नयी आत्मा मिलेगी और वही सत्य होगी। मेरी ओर मत देखो। यह नीली झील और उसका तान्त्रिक मैं, केवल इन्द्रजाल थे। यह झूठा खेल था जो अब खत्म होता है।

**(एक ओर तान्त्रिक और दूसरी ओर आगन्तुक जाता है।)**

**(सामने का पर्दा भी गिर जाता है।)**

